लेखक

इन्द्रसेन शर्मा आयुर्वेदालङ्कार

विषय संख्या ५५ / ३८० आगत नं० ३४२०२

लेखक डा० इन्द्रसेन शर्मा जेत्ली

शीर्षक पाश्चात्य चिकित्सा सार

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या



पाश्चात्य-चिकित्सा-सार

(Manual of Western Medical Treatment)

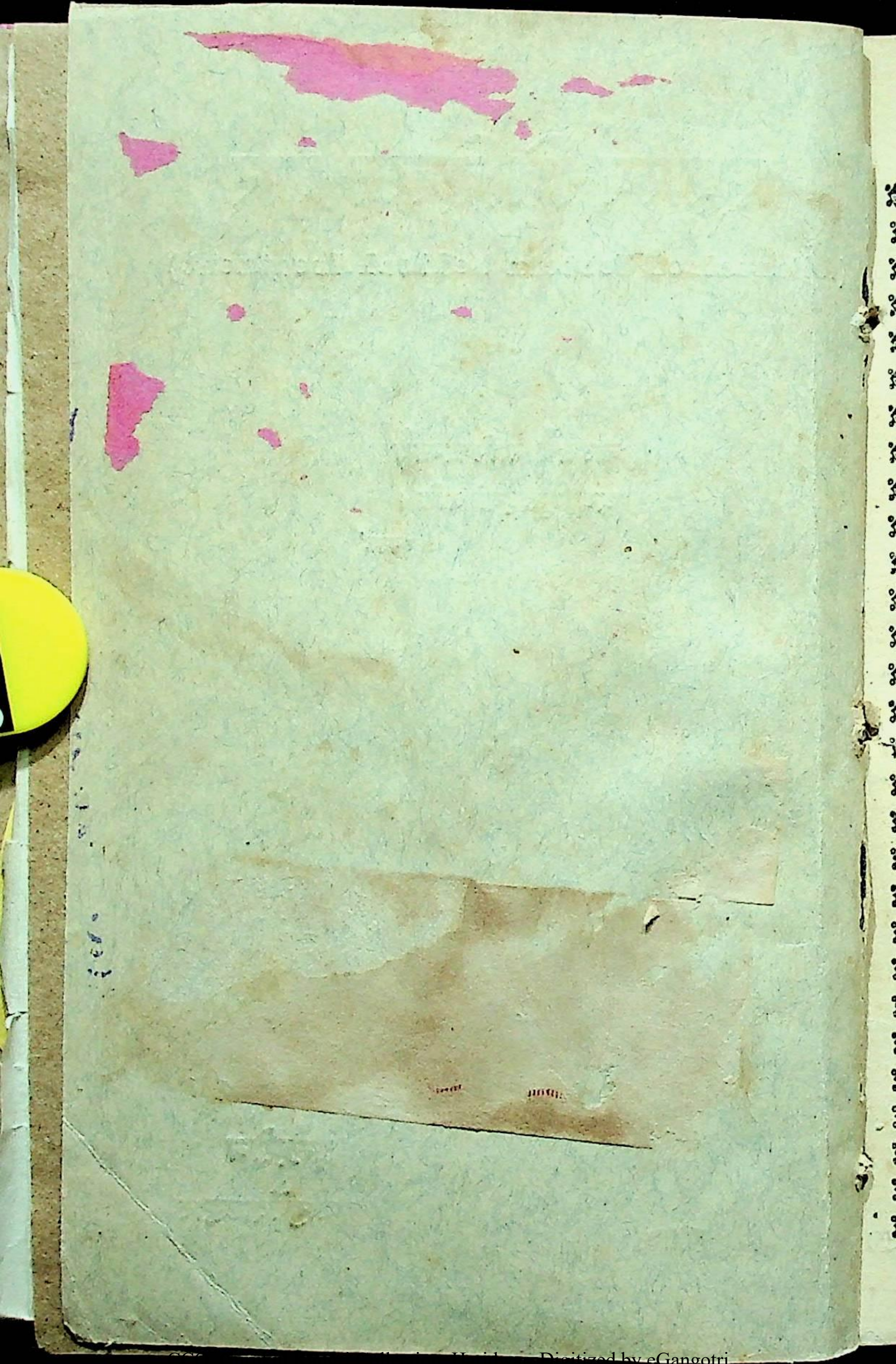
नात्मार्थं नापिकामार्थं
अथ भूतदयां प्रति ।
'चरक'







इन्द्रसेन
आयुर्वेदालङ्कार





पाश्चात्य-चिकित्सा-सार

लेखक—
आयुर्वेदाचार्य, भिषगाचार्य, प्राणाचार्य
डा० इन्द्रसेन शर्मा जेतली हिन्दी प्रभाकर
B.A., M.B.B.S., Hindi Hons.
(Punjab University)
D.T.M. (Calcutta School of Tropical Medicine).
आयुर्वेदालङ्कार (गुरुकुल विश्वविद्यालय)
भूतपूर्व प्रो० पञ्जाब आयुर्वेदिक कालिज
तथा वर्तमान उपाध्याय गुरुकुल आयुर्वेद
महाविद्यालय, गुरुकुल काङ्गड़ी।

'आयुर्वेद की उन्नति कैसे हो?' 'फिरंग रोग' 'एक्स रे'
'नेत्र रोगों का तुलनात्मक विज्ञान' 'अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ'
'उष्ण देशों के रोग' आदि आदि पुस्तकों के प्रणेता
नाना पारितोषकों और Merit Scholarships
द्वारा सुशोभित तथा सम्मानित।

प्रथम संस्करण	सम्वत् १९९६	मूल्य ३)
१००० प्रति	सन् १९३९	तीन रुपये।

प्रकाशक—

डा० इन्द्रसेन M.B,B.S.
P.O. Bhera
Dist. Shahpur (*Punjab*)





मुद्रक—
चौ० हुलासराय
गुरुकुल यन्त्रालय
गुरुकुल काङ्गड़ी (सहारनपुर

भूमिका

यह मेरी तीसरी पुस्तक है जो मुद्रित होकर अब प्रकाशित होने जारही है। इस को मने आज से दो साल पूर्व लिखा था। इसमें पाश्चात्य चिकित्सा के कुछ विषयों का समावेश नहीं किया गया है जैसे कि 'उष्ण देशों के रोग', मधुमेह इत्यादि। उष्ण देशों के रोगों पर मैं स्वतन्त्र पुस्तक लिख रहा हूँ और अब कुछ ही समय में यह समाप्त होकर मुद्रणार्थ भेज दी जायगी। इसमें मलेरिया, कालाज़ार, कोढ़, श्वेतातिसार, निद्रारोग, दण्डक ज्वर अमीवज प्रवाहिका, शलाकज प्रवाहिका, अंकुर-कृमिरोग, हस्तिपाद, नारुवा, विषैले सांपों की पहचान और उनके दंश की चिकित्सा आदि सब, भारत वर्ष प्रभृति गरम देशों में बहुतायत से पाए जाने वाले रोगों का पूरा पूरा वर्णन होगा। सो पाठक इन सब रोगों का अच्छा ज्ञान इस पुस्तक से प्राप्त कर सकेंगे इसी प्रकार अन्तःस्रावी ग्रन्थियों पर भी एक पुस्तक लिखी जा चुकी है, जिसमें मधुमेह और उसकी चिकित्सा, इन्सुलीन का प्रयोग, ग्रैवेयक ग्रन्थियों के रोग, उपग्रैवेयक ग्रन्थियों के रोग, पिचुटरी ग्रन्थियों के रोगों आदि का सुबोध भाषा में वर्णन किया गया है सो पाठक इन रोगों का सम्यक् ज्ञान भी इस अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (Endocrine glands) की पुस्तक से प्राप्त कर सकेंगे।

यह पाश्चात्य-चिकित्सा सार जिस लक्ष्य को रखकर-लिखा गया है उस में त्रुटि नहीं हुई है इस बात का मुझे

पूरा सन्तोष है। चूंकि यह चिकित्सा-मात्र की पुस्तक है इस लिए न तो इसमें शल्यकर्म का ज्ञान दिया गया है और नाहीं रोगों के लक्षण, रोग विनिश्चय आदि पर ही कुछ लिखा गया है। इन विषयों की अन्यान्य पुस्तकें अगर सामर्थ्य बना रहा और परमात्मा ने कृपा की तो पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता रहूंगा।

इस पुस्तक में जो सब ज्ञान इकट्ठा किया गया है उसके लिए हमें पाश्चात्य चिकित्सा के निर्माण-कर्ताओं को हार्दिक धन्यवाद देना चाहिए। और आधुनिक समय के पाश्चात्य चिकित्सा के धुरन्धर विद्वानों को विशेष रूप से कि जिन के प्रयोगों का मैंने इस में संकलन किया है। इस पुस्तक में दिए हुए सब प्रयोग इन्हीं धुरन्धर विद्वानों के हैं और लाखों व करोड़ों रोगियों पर परीक्षित हुए हुए हैं। इन धुरन्धर विद्वानों में डा० हुचिसन, डा० व्यूमाउन्ट, डा० प्राइस् आदि के नाम विशेष रूप से महत्व के हैं।

आयुर्वेद और हिन्दी सेवा की जो मेरे मन में अदम्य कामना है उसकी फल स्वरूप यह पुस्तिका है। और शेष बातें जो कुछ भूमिका में लिखनी आवश्यक हैं मैंने अपनी पूर्व प्रकाशित पुस्तकों की भूमिकाओं में लिख ही दी हैं सो उन्हें दुहराने की जरूरत नहीं

२७-६-३६

इन्द्रसेन

गुरुकुल कांगड़ी



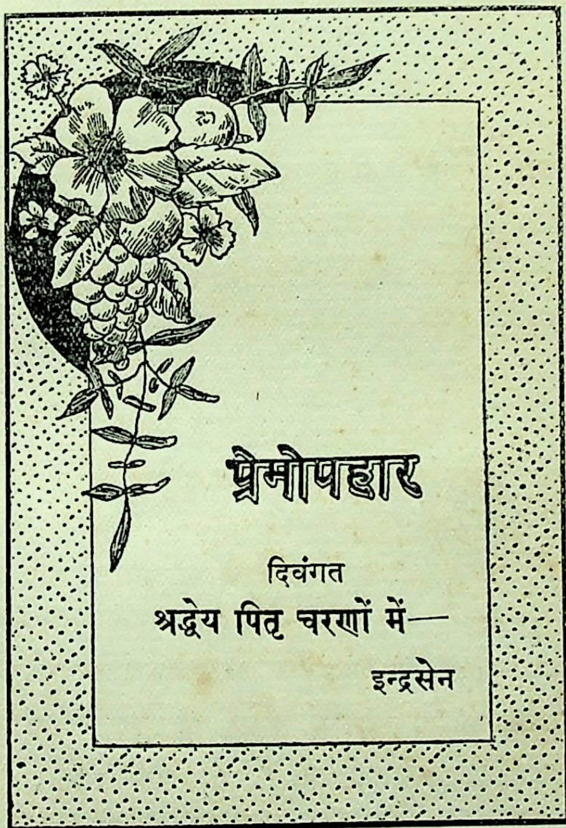
विषय सूची

सूचना

पाठकों के लिए यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि मेरी निम्न पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

(१) 'फिरंग रोग' की पुस्तक छप चुकी है। आयुर्वेद जगत् ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है डा० आशानन्द जी ने इस पुस्तक पर भूमिका लिखते हुए लिखा है कि "मेरी दृष्टि से इस प्रस्तुत पुस्तक से अधिक विस्तृत, सुन्दर, और पूर्ण पुस्तक नहीं गुज़री"। तुलनात्मक दृष्टि से, पुस्तकान्त में, संक्षेपतः आयुर्वेदोक्त फिरंग का उल्लेख भी कर दिया है।

(२) 'एक्सरे' इस में यह बताया गया है कि वैद्य गण एक्सरे फोटुओं को कैसे आसानी के साथ पढ़ सकते हैं। और पढ़कर रोग-निश्चय में किस प्रकार मदद ले सकते हैं। इस पुस्तक को पढ़ने से वैद्यों को एक्सरे का सम्पूर्ण आवश्यक ज्ञान बड़ी आसानी से हो सकता है। हिन्दी में एक्सरे की पहली पुस्तक है। भाषा बड़ी सरल और शैली बड़ी मनोरञ्जक है। मिलने का पता—मनेजर, झिंगन हाउस, रावलपिण्डी शहर। मूल्य फिरंग रोग २), एक्सरे १) मात्र।


प्रेमोपहार
दिवंगत
श्रद्धेय पितृ चरणों में—
इन्द्रसेन



श्री प्रो० भवानी प्रसाद जी
प्राकृतिक चिकित्सक
की सेवा में सादर समर्पित
[illegible]
४.२.५६

पाश्चात्य-चिकित्सा-सार

पहिला उद्बोध

परिचय



कित्सा मुख्यतः दो प्रकार की होती है— (१) मौलिक (Radical) (२) लाक्षणिक (Symptomatic) पर एक तीसरा प्रातीक्षिक (Expectant) प्रकार भी है।

मौलिक चिकित्सा—से तात्पर्य उस चिकित्सा से है जिसके द्वारा हम किसी रोग के समूल नाश में प्रयत्नवान् हों; जैसे विषमज्वर में कुनीन, मिक्सोडीमा (Myxoedema) में थायरॉयड्।

लाक्षणिक चिकित्सा—से तात्पर्य उस चिकित्सा से है जिसके द्वारा हम किसी रोग के लक्षणों को ही दूर करने में तत्पर हों। पर लक्षणों की चिकित्सा हमेशा अपेक्ष नहीं होती है, उदाहरणार्थ खांसी कई रोगों का एक लक्षण है। यह फुफ्फुस-पर्यावरण-शोथ में भी मिलता है और श्वासनालियों की शोथ

में भी। फुफ्फुस-पर्यावरण शोथ में खांसी का रोकना लाभकर है, पर श्वासनालियों की शोथ में लाभकर नहीं है। इसलिए खांसी की चिकित्सा श्वासप्रणालीशोथ (Bronchitis) में अपेक्ष न हुई।

प्रातीक्षिक चिकित्सा—में हम केवल प्रतीक्षा करते हैं। रोगी पर लगातार पहरा रखते हैं। यों तो हम रोगी का कुछ भी इलाज नहीं कर रहे होते पर उसमें कोई उपद्रव होने की सम्भावना हो तो उपद्रव दूर करने के लिए तत्पर रहते हैं।

अस्तु, मुख्यतया दो ही प्रकार की चिकित्सा होती है। मौलिक तथा लाक्षणिक। हम चिकित्सा के लिए जो पदार्थ प्रयुक्त करते हैं, उन्हें दवा कहते हैं। दवाइयाँ दो प्रकार की होती हैं, युक्तियुक्त तथा आनुषंगिक (Empirical)।

युक्तियुक्त—से तात्पर्य उन दवाइयों से है जिनका किसी रोग के लिए प्रयोग करना संयुक्तिक हो और समझ कर किया गया हो।

आनुषंगिक—से तात्पर्य उन दवाइयों से है जिनके बारे में हम केवल यही कह सकें कि इस औषध के देने से यह बीमारी अच्छी हो जाती है या इसमें लाभ होता है; पर यह पता नहीं कि कैसे ?

कई औषधियाँ जो पहिले आनुषंगिक तौर पर दी जाती हैं, पीछे से युक्तियुक्त हो जाती हैं। जैसे कि पहिले कुनीन आनुषंगिक तौर पर दी जाती थी पर अब युक्तियुक्त मान कर दी जाती है।

चिकित्सा हम मुख्यतः सात विधियों से करते हैं।

(१) परिचर्या (२) पथ्य (३) दवा (औषध) (४) जैवाणविक (५) मर्दनादि (६) वैचारिक (७) शल्यकर्म।

(१) परिचर्या—की विधि में हम रोगों की परिचर्या पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। रोगी को बिस्तरे पर ही लेटे रहना चाहिए या चलते फिरते रहना चाहिए, इत्यादि।

(२) पथ्य—में हम रोगी के खान पान आदि पर विचार करते हैं।

(३) दवाइयों—के बारे में अकसर कहा जाता है कि या तो ये रोग नष्ट कर देती हैं या शान्त कर देती हैं। अगर और कुछ नहीं तो कम से कम रोगी को शान्ति तो देती हैं। मतलब यह है कि दवाई या तो बीमारी की जड़ उखाड़ देती है, अगर ऐसा नहीं कर सकती तो बीमारी को ठण्डा कर देती है। अर्थात् उसकी तेजी या उग्रता को हटा देती है। अगर यह भी नहीं, तो कम से कम रोगी को तो बहुत तसल्ली देती है। और रोग से मुकाबला करने के लिए उसका हौसला बढ़ाती है।

दवाइयों को जहाँ तक हो सके बहुत ही सादे तरीके से वर्तना चाहिए। बहुधा उचित चिकित्सा के लिए कुछ औषधियों को मिलाकर वर्तना अभीष्ट होता है। ऐसा करते हुए विवेचनात्मक बुद्धि से काम लेना चाहिए। अन्धाधुन्ध दवाइयों का जमघट नहीं करना चाहिए। अधिक दवाइयों का मिलाना यह दर्शाता है कि औषधियों का सम्यग् प्रयोग नहीं हो रहा है। इस

अन्धाधुन्ध मिश्रण ने आयुर्वेद की उन्नति में बड़ा रोड़ा अटकाया है। यह बात मैं अपनी आयुर्वेदोन्नति नामक पुस्तक में बता चुका हूँ। इन औषधियों के मेल से बने हुए नुस्खे को योग कहा जाता है। योगों में चार प्रकार के पदार्थों का मिश्रण किया जाता है। (१) आधार (२) संयोगी (३) संशोधक (४) संवाहक।

योगों में चार गुण होने चाहिएँ (१) ये रोग को दूर करने वाले हों। (२) शीघ्र से शीघ्र दूर करने वाले हों। (३) दूर करते हुए इन के उपयोग से रोगी को किसी प्रकार का खतरा न होवे। (४) रुचि के अनुसार हों। अर्थात् योग, शीघ्र रोगनाशक, रोचक और भयशून्य होने चाहिएँ।

योगों का **आधार** रोगनाशक का कार्य करता है। **संयोगी** इन के असर को शीघ्रोत्पन्न करने में सहायक होता है। **संशोधक** इन्हें भयावह या हानिकर होने से सुरक्षित करता है। और **संवाहक** इन्हें रुचिकर या मनोनुकूल बनाता है।

प्रत्येक योग-पत्र (अर्थात् लिखे हुए नुस्खे) में आज कल चार बातों का समावेश किया जाता है। (१) योगपूर्व (२) योग (३) योगोत्तर (४) हस्ताक्षर। जो कुछ योग के ऊपर लिखा जाता है, उसे योगपूर्व लेखन से सूचित कियागया है। इस में रोगी का नाम, रोगीका रोग, और योग निर्माण की आज्ञा अन्तर्गत होती हैं। **योगनिर्माण** की आज्ञा औषधवितरक (Dispenser) के प्रति होती है। इसे 'प्र' लिख कर और प्र के र को काटकर सूचित किया जा सकता है।

योग में, उपरोक्त चार प्रकार की औषधें और उनकी मात्राएँ लिखी हुई होती हैं। इसके बाद योगोत्तर होता है। योगोत्तर में रोगी को जो हिदायतें देनी आवश्यक होती हैं, निर्दिष्ट की जाती हैं। इस के बाद चिकित्सक के हस्ताक्षर होते हैं और उन के नीचे तिथि दी जाती है।

योगों में पारस्परिक वियोगी पदार्थ नहीं होने चाहिएँ। यह वियोगिता तीन प्रकार की होती है। (१) पदार्थों के औषध गुणों की दृष्टि से। (२) पदार्थों के रासायनिक गुणों की दृष्टि से (३) पदार्थों के भौतिक गुणों की दृष्टि से।

औषधगुण-वियोगिता—जब कि दो औषधियों के गुण एक दूसरे के विपरीत हों तो इन्हें योगों में नहीं मिलाना चाहिए। इनकी वियोगिता को औषधगुण-वियोगिता कहा जाता है। जैसे उत्तेजक और प्रशामक का मिश्रण, या वहिनीसंकोचकों का तथा वाहिनीप्रसारकों का मिश्रण।

रासायनिक-गुणवियोगिता—जो पदार्थ आपस में मिलाने से एक दूसरे पर रासायनिक क्रिया करें उन्हें एक दूसरे के साथ नहीं मिलाया जाता है।

भौतिकगुण-वियोगिता—कई औषधियों को मिलाने से वे एक दूसरे के साथ ठीक तरह नहीं मिलती हैं और मिश्रण में कई दोष रह जाते हैं, जैसे कि औषधियाँ एक दूसरे से पृथक् ही रह जाती हैं। इन में से कोई एक दवाई ऊपर ही तैरती रहती है या तल में ही बैठ जाती है, या दवाई का रंग बड़ा गन्दा बन जाता है इत्यादि। इन अवस्थाओं में भी ऐसी दवाइयों को आपस

में नहीं मिलाना चाहिए। इन्हें अंग्रेजी में औषध-निर्माणीय-वियोगिता अर्थात् Pharmaceutical incompatibility कहा जाता है। पर मैंने इस वियोगिता को भौतिक-वियोगिता का नाम दिया है क्योंकि औषधियों की वियोगिता उन के भौतिक गुणों के कारण होती है।

(४) चौथी चिकित्सा की विधि जैवाणविक है। जैवाणविक से मतलब जीवाणुओं सम्बन्धी है। जैसे कि हनुस्तम्भ (Tetanus) में हम रोग के जीवाणुओं की प्रतिविष वाले रक्तवारि को रोगी में प्रविष्ट करते हैं, इसी तरह डिफ्थीरिया रोग में। कई रोगों में हम वैक्सीनें (Vaccines) देते हैं। रोग विशेष के मृत जीवाणुओं का घोल बना कर देते हैं। इन जीवाणुओं सम्बन्धी चिकित्सा के उपचारों को जैवाणविक चिकित्सा कहना चाहिए।

(५) पांचवीं विधि वैचारिक चिकित्सा की है। इस में रोगी के विचारों का परिवर्तन करने की कोशिश की जाती है। उसकी मनोवृत्तियों का अनुशीलन करके उन्हें स्वस्थता के क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया जाता है। इस चिकित्सा को हम अपने आयुर्वेद के चिकित्सा-ग्रन्थों में भूतविद्या का नाम देते आए हैं। पर अब हमें यह नाम बदल देना चाहिए। और मेरी सम्मति में इसे वैचारिक-चिकित्सा (Psychotherapy) कहना चाहिए।

(६) मर्दनादि—से मतलब मालिशों से है अर्थात् शरीर के संघर्षण, पेषण, मर्दन, टङ्करण इत्यादि से। इनके द्वारा

भी चिकित्सा होती है और इस चिकित्सा को मर्दनादि-चिकित्सा (Physiotherapy) का नाम दिया गया है।

(७) सातवीं विधि शल्य कर्म की है। इस विधि के विषय में किसी टिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं है। यह स्वयं स्पष्ट है। इस विधि का उल्लेख इस पुस्तक में अभीष्ट नहीं है।

मुख्यतः चिकित्सा को दो विस्तृत विभागों में बांट दिया गया है। कायचिकित्सा (Medicine) और शल्य-चिकित्सा (Surgery)। यह पुस्तक पाश्चात्यायुर्वेद की कायचिकित्सा पर एक दृष्टि डालने के उद्देश्य से लिखी जारही है।

हमारे आयुर्वेद ग्रन्थों में जगह जगह पर यह लिखा मिलता है कि अमुक २ लक्षणों वाला रोगी असाध्य है और इस लिए वैद्य इस प्रकार के रोगी को छोड़ दें। या इसकी चिकित्सा न करें। यहाँ पर पाठकों को यह विदित हो कि मैंने जहाँ आयुर्वेद शब्द का प्रयोग किया है वहाँ मेरा मतलब अपने प्राचीन भारतीयायुर्वेद से है। और जहाँ पाश्चात्य-आयुर्वेद लिखा है वहाँ एलोपैथी से है।

मैंने अपनी आयुर्वेदोन्नति सम्बन्धी पुस्तक में इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है कि इन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में असाध्य रोगियों को छोड़ देने के लिए लिखने का संभवतः क्या तात्पर्य हो सकता है। वस्तुतस्तु उत्तम चिकित्सक का यह कर्तव्य नहीं कि रोगी को कभी भी छोड़े। यदि रोग असाध्य है और रोगी ने निश्चय मरना ही है तब उसका प्रयत्न यह होना चाहिए कि रोग के कष्ट को जहाँ तक हो सके कम करे।

दूसरा उद्बोध

ज्वर



रों की चिकित्सा में पाश्चात्यायुर्वेद का मत क्या है ? अब इस विषय पर विचार किया जायगा।

ज्वरों की चिकित्सा का लेखन प्रारम्भ करते हुए सबसे प्रथम प्रश्न यह उठता है कि क्या ज्वरों में रोगी के तापमान को घटा देना लाभकर है ? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि सर्वदा तापमान का घटाना लाभकर नहीं होता। यदि तापमान बहुत उच्च होगया हो तो ज़रूर इसे घटा कर तापमान की सुरक्षित सीमा के अन्दर ले आना चाहिए। पर तापनिवारक या तापनाशक औषधियाँ देकर रोगी के साधारण तापमान को घटाना लाभप्रद होने की बजाए (रोगी को) बड़ा नुकसानदेह होता है।

ज्वरों की चिकित्सा करते हुए तीन बातों पर ध्यान दिया जाता है।

(१) ज्वर के कारण को दूर किया जाय।

(२) रोगी की शारीरिक शक्ति और शरीर की प्रति-

शक्ति (Resistance) को कम न होने दिया जाय। बल्कि जहाँ तक हो सके बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

(३) जहाँ पर तापमान बहुत ऊंचा हो और रोगी को बड़ा बेचैन कर रहा हो, तो, कम करने के उपायों का प्रयोग होना चाहिए।

(१) आज हमें अनेकों, ज्वरों के कारणों का पता है। और साथ ही कई ज्वरों वाले इन रोगों में ऐसी औषधियों का भी पता है जो इनके कारणरूप जीवाणुओं इत्यादि पर विशेष नाशक प्रभाव रखती हैं। सो ऐसे ज्वरों में इन औषधियों का वर्तना कारणोद्दिष्ट चिकित्सा होती है। जैसे कि विषम-ज्वर (Malaria) में कुनीन का वर्तना। कुनीन विषम-ज्वर के पराश्रयियों को नष्ट करती है। कुनीन साथ ही तापमान को भी कुछ कम करती है। पर कुनीन का प्रयोग मुख्य रूप से कारण- सम्बन्धी है।

(२) हमारा ज्वरचिकित्सा का दूसरा उद्देश्य रोगी की शारीरिक शक्ति और शरीर की प्रतिशक्ति दोनों को कायम रखने का होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हम परिचर्या तथा पथ्य-सेवन सम्बन्धी आदेशों उपदेशों व निर्देशों द्वारा करते हैं।

(क) परिचर्या सम्बन्धी निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

(i) रोगी को शय्यारूढ़ होना चाहिए। उसे चलने फिरने से रोक दिया जाय।

(ii) रोगीगृह का तापमान ६० और ६५ डिग्री फार्हन्-हाइट के दर्मियान होना चाहिए।

(iii) रोगीगृह की वायु का आवागमन (Ventilation) उपयुक्त प्रकार का होना चाहिए। भारतवर्ष में अकसर रोगीगृहों की वायु का आवागमन दोषपूर्ण होता है। गांवों में तो इस की हद ही हो जाती है। रोगी छप्पर में या कुल्ली में एक ओर, कोने में सुला दिया जाता है और कुल्ली का दरवाज़ा उससे कहीं दूर रह जाता है। रोगी के रिश्तेदार दरवाज़े को घेर कर बैठ जाते हैं और इस तरह बजाए रोगी को सहायक होने के उसके लिए हानिकर हो जाते हैं।

(iv) रोगी के बिछोने में उसके ओढ़ने के लिए न बहुत भारी व बहुत अधिक कपड़े ही होने चाहिएँ और न बहुत कम। ये कपड़े हलके थोड़े और गरम होने चाहिएँ। अगर रोगी को बहुत और भारी २ कपड़ों से लाद दिया जाय तो उसका सांस ही रुकने लगता है।

(v) उपयुक्त परिचारकों तथा परिचारिकाओं का प्रबन्ध करना चाहिए। कई ज्वरों में बहुत शिक्षित और बड़ी योग्य परिचारिका की आवश्यकता होती है जैसे कि टाईफायड तथा कई रोगों में साधारण परिचारिका ही काफ़ी होती है।

कुछ समय हुआ ज्वर के रोगियों को उपवास कराना अच्छा समझा जाता था। पर अब चिकित्सकों का विचार बदल गया है। सुपच और पौष्टिक ख़ुराक अच्छी समझी जाती है। पौष्टिक से मतलब Nourishing से है। जो ख़ुराक सुपच होती है उसे हम हलकी कहते हैं। सो ख़ुराक हलकी अर्थात् जल्दी से पचने वाली और शरीर की पुष्टि करने वाली होनी

चाहिए। इसके लिए दूध बहुत अच्छा है। दूध जहाँ सुपच और पुष्टिकारक होता है वहाँ पर साथ ही द्रव भी होता है और द्रव भोजन ज्वर के रोगियों में अधिक लाभप्रद होता है। दूध भी मेरी समझ में गौ का हो तो अधिक अच्छा है क्योंकि भैंस का दूध भारी होता है। भैंस के दूध में वसामय पदार्थ (Fat– यहाँ पर मक्खन या मलाई) अधिक होता है और इस लिए यह शीघ्र नहीं पचता है। यदि भैंस के दूध के अतिरिक्त और दूध प्राप्त न होता हो तो इसी में पानी मिलाकर कुछ हलका किया जा सकता है। दूध में प्रोटीन, कर्बोदित, वसामय पदार्थ, विटामिन, अनैन्द्रियक पदार्थ (Mineral) और पानी सब उचित मात्रा में होते हैं। ये पदार्थ हमारे भोजन के अंग हैं और सब के सब दूध में उपस्थित होते हैं। इसलिए दूध पूर्ण-भोजन है और पौष्टिक है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो, इसकी (दूध की) भोजनात्मक-विशिष्टता (Food Value) आदर्श होती है। दूध अगर लगातार रोगी को दिया जाय तो उसका चित्त ऊब जाता है। इस लिए चाय, कोकोआ वगैरह से इसका स्वाद बदल कर दे सकते हैं। पर ऐसा करते हुए चाय, कोकोआ वगैरह को बहुत थोड़ा प्रयोग करना चाहिए। केवल इतना कि स्वाद बदले। ये नहीं कि दूध का स्थान ही लेले। इसके अतिरिक्त कर्बोदितों के भोजन दूध के साथ तैय्यार किए हुए भी दिए जा सकते हैं। जब बुख़ार कुछ उतरने लगे तब इनका दिया जाना अधिक अच्छा है। कर्बोदित केवल शरीर की गर्मी को पैदा करने में भाग लेते हैं। ये नए तन्तुओं (Tissues) को बनाने

में न के बराबर भाग लेते हैं। वसा और प्रोटीनें शरीर के तन्तुओं को बनाने में भाग लेती हैं। ज्वर के समय शरीर के लिए शारीरिक तन्तुओं का बनाना सर्वथा अनावश्यक होता है। उस समय तो शरीर की शक्ति केवल बीमारी का मुकाबला करने में लग रही होती है। इसलिए इस हालत में वसा और प्रोटीन वाले पदार्थों का प्रयोग करना अनावश्यक होता है। केवल अनावश्यक ही नहीं होता पर क्योंकि इन्हें Metabolise (मेटाबोलाइज़) करने के लिए शरीर के यकृत्आदि अंगो को कार्य करना पड़ता है और Metabolism से पैदा हुए २ पदार्थों को शरीर से बहिष्कृत करने के लिए वृक्कों को अधिक कार्य करना पड़ता है अतः ये उल्टे हानिकारक होते हैं। जब रोगी ज्वर से पीड़ित हो तो वह अपने शरीर की ताकत इन बातों के लिए नहीं खर्च कर सकता है, क्योंकि उसकी ताकत तो उस समय बीमारी के साथ लड़ने के लिए दरकार होती है। पर अगर उसे इस काम के लिए भी ताकत खर्च करनी पड़े तो वह ताकत जो उसे बीमरी के लड़ने के लिए लगानी चाहिए कम हो जाती है। इससे यह मतलब न समझना चाहिए कि दूध में क्योंकि थोड़े बहुत वसा और प्रोटीन होते हैं तो उसे भी न देना चाहिए। नहीं, दूध एक सुपच पदार्थ है और वसा और प्रोटीन की इतनी मात्रा (जितनी कि दूध में होती है,) हानिकारक नहीं होती है। इसके अतिरिक्त कर्बोदित देने अच्छे होते हैं। पर अधिक ज्वर हो तो केवल दूध ही दिया जाना चाहिए। कर्बोदित जैसे साबुदाना, चावल वगैरह की खीर बनाकर दी जा

सकती है। आज कल कई कबींदितों के पेटेन्ट खाद्य (पेटेन्ट फूड) भी निकल आए हैं, उन्हें रोगियों में दे सकते हैं।

फलों के रस सुपच और द्रव भोजन होते हैं। और दिए जा सकते हैं जैसे कि नारंगी का रस आदि। पर इनको देते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि इनकी भोजन-विशिष्टता (Food value) बहुत थोड़ी होती है।

इसके अतिरिक्त मद्य (Alcohol) को बहुत काल से वर्ता जा रहा है। ज्वररोगियों के लिए मद्य दूध से अच्छी चीज़ नहीं है। मद्य में यद्यपि भोजन-विशिष्टता तो होती है पर इसका देना दूध जितना लाभप्रद नहीं है। और फिर ये नशेवाली चीज़ है। जो लोग नशों के सेवन के आदि नहीं उन्हें इसका देना अनावश्यक और अनुपयुक्त है। मद्य को दो प्रकार से दिया जाता है। इङ्गलैण्ड में तो ब्राण्डी और ह्विस्की के रूप में देते हैं। पर यूरोप में बीयर या हलकी वाइन को देते हैं। ब्राण्डी को अगर देना आवश्यक हो तो २४ घण्टे में चार औंस की मात्रा में देना चाहिए। इसे पानी से हलका करके छोटी २ मात्राओं में दिया जाता है। छे घण्टे में १ औंस दी जाती है।

(३) ज्वर चिकित्सा का तीसरा उद्देश्य यह बताया गया था कि जहाँ पर तापमान बहुत ऊँचा हो वहाँ इसे कम करने के उपायों का प्रयोग करना चाहिए।

तापमान कम करने के तीन प्रकार हैं।

(क) ताप का बनना कम किया जाय।

(ख) शरीर के ताप का नाश अधिक तेज़ी से किया जाय।

(ग) ताप के मस्तिष्कस्थ केन्द्र की समता को नीचे किया जाय।

यहाँ पर संक्षेप में यह बता देना आवश्यक है कि शारीरिक तापमान का नियमन किस प्रकार होता है। हमारे भोज्य पदार्थ दो प्रकार के होते हैं। वनस्पतिजन्य और प्राणिजन्य। जो लोग मांस खाते हैं उनका खुराक में प्राणिजन्य भोजन होता है। जो निरामिष भोजी हैं वे वनस्पति आदि का तथा दूध का भोजन करते हैं। संसार में प्रायः सारे के सारे मनुष्य वनस्पतिजन्य पदार्थों का उपभोग करते हैं। अर्थात् इन्हें खाते हैं। दूध प्राणिजन्य पदार्थों में परिगणित है।

ये पदार्थ शरीर में जाकर विश्लिष्ट होते और संश्लिष्ट होते हैं। जो विश्लिष्ट होते हैं वे विश्लिष्ट होकर शक्ति (Energy) को पैदा करते हैं। ताप भी एक शक्ति है। यह भी पैदा होती है। हम चलते हैं, काम करते हैं। ये सब काम शक्ति से होते हैं। शक्ति भोजन द्वारा प्राप्त पदार्थों के विश्लेषण से तैयार होती है। पर कई पदार्थ पहले कुछ हद तक विश्लिष्ट होकर फिर इसी शक्ति की सहायता से संश्लिष्ट होते हैं और शरीर के तन्तुओं (Tissues) का निर्माण करते हैं। जीर्ण तन्तुओं की जगह नए तन्तुओं का निर्माण शरीर की स्वस्थता के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

ताप की शक्ति की उत्पत्ति मांसपेशियों तथा रसोत्पादक ग्रन्थियों (Secretary glands) द्वारा होती है। पर इस ताप-निर्माण का नियामक मस्तिष्क में एक केन्द्र होता है। इसी केन्द्र द्वारा ताप-निर्माण का शासन होता है। इस केन्द्र में से रक्त की छोटी २ रक्त वाहिनियाँ और केशिकाएँ गुज़रती हैं। इन में बहता हुआ रक्त इस केन्द्र को बताता रहता है कि कब शरीर का क्या ताप परिमाण है ? इस केन्द्र का कार्य शरीर के तापमान की समता (Level) को स्थापित करना होता है। यदि ये केन्द्र यह स्थापित करे कि शरीर का तापमान ९८ . ४° फाहरनहाइट् होवे तो शरीर इसी तापमान पर स्थित रहने का प्रयत्न करता है। जब ये केन्द्र करार दे कि नहीं शरीर का तापमान १०३° फाहरनहाइट् होना चाहिए तो शरीर को इसी तापमान पर आना पड़ता है।

ज्वरों में अकसर रोगजीवाणु-जन्य विषें रक्त में संचार कर रही होती हैं। ये विषें रक्त में संचारित होती हुई जब मस्तिष्क के केन्द्र में से गुज़रने वाली वाहिनियों में से गुज़र रही होती हैं तो इस केन्द्र पर भी असर करती हैं। इस केन्द्र का नियामन विकृत हो जाता है। यह समता को ९८.४°. पर स्थापित करने की बजाए अधिक ऊँची समता पर स्थापित करता है शरीर को इसका आदेश मान्य होता है। इस लिए शरीर कोशिश करता है कि ताप ऊँचा हो। इस कार्य की पूर्ति के लिए मांसपेशियां नियुक्त की जाती हैं। मांसपेशियां पुनः पुनः संकोच

करती हैं। और यही अवस्था है कि जिसे हम रोगियों से अकसर पूछते हैं। क्या तुम्हें सर्दी लगी है?

इसके बाद शरीर से ताप का नाश या तो पसीने द्वारा होता है। या त्वचा द्वारा, या मूत्र, या श्वास या मल द्वारा। जब शरीर का तापमान ऊँचा हो तो शरीर पसीने आदि द्वारा इसका परिहार करता है। हमें पसीना आता है प्यास लगती है। मूत्र भी अधिक आता है। श्वास भी तीव्र होता है और इस प्रकार श्वासाधिक्य से भी मुंह सूखने के कारण प्यास अधिक लगती है। इन विधियों से ताप के आधिक्य का परिहार होता है।

तो इस प्रकार हम तीन तरह से शरीर के तापमान को कम करने में सफल हो सकते हैं।

(१) शरीर के तापमान की उत्पत्ति को घटाकर।

(२) शरीर के ताप-केन्द्र पर औषधियों द्वारा ऐसा असर किया जाय कि तापकेन्द्र ताप की समता को कम करदे अर्थात् शरीर को कम तापमान रखने का आदेश करे।

(३) शरीर से तापमान का पसीने आदि द्वारा परिहार करके।

शरीर के तापमान की उत्पत्ति को कम करने वाली औषधियाँ हमारे पास नहीं हैं। यद्यपि हम शरीर की क्रियाओं को कम कर के इसकी उत्पत्ति को जहाँ तक हो सके कम कर देते हैं पर इससे अधिक कुछ नहीं कर सकते हैं। आवश्यक Metabolism और ताप निर्माण तो होता ही है। पर ज्वर-रोगियों में जिन में कि तापपरिमाण बहुत उच्च हो ये निर्माण भी बहुत

अधिक होता है। इसका कारण यह होता है कि ताप के केन्द्र ने ऊँची समता का आदेश किया हुआ होता है। कुनीन को तापोत्पादन कम करने वाली औषधियों में गिना जाता है। पर इस औषध का, तापोत्पादन का कम करना न के बराबर या बहुत थोड़ा होता है। हमारे पास इस उद्देश्य को पूरा करने वाली वस्तुतस्तु कोई भी औषध नहीं है।

इसके बाद दूसरा प्रकार केन्द्र सम्बन्धी है। निसन्देह हमारे पास कई औषधिएँ हैं जो तापकेन्द्र पर प्रभाव करती हैं। इनके प्रभाव से तापकेन्द्र की समता कम हो जाती है। पर इस समता का कम करना कहाँ तक लाभप्रद है ये विचारणीय विषय है। ये याद रहे कि इस विषय पर थोड़ासा प्रकाश इस अध्याय के आरम्भ में डाला जा चुका है। और अधिक विचार इस पुस्तक में नहीं दिया जा सकता है। कोलतार (या तारकोल) से उत्पन्न कुछ औषधियाँ जैसे एण्टिफेब्रिन, एण्टिपाइरिन, फिनेस्टिन, पाइरेमिडौन इत्यादि, इसी तापकेन्द्र पर प्रभाव करती हैं और इस तापकेन्द्र की समता को नीचे गिरा देती हैं। इन औषधियों को सावधानी से बर्तना चाहिए। अन्धाधुन्ध नहीं। हमेशा ताप का घटाना अभीष्ट नहीं होता है। कई चिकित्सक Enteric fever (आन्त्र-ज्वर) में रोगी को फिनेस्टिन दे देकर मृतप्राय ही कर डालते हैं।

तीसरा प्रकार ताप के नाश की रफ़्तार को बढ़ा कर शरीर के तापमान को कम करने का है। यही प्रकार अकसर वर्ता जाता है और इसे वर्तना उपादेय भी है। इस तापनाश की रफ़्तार को बढ़ाने के दो तरीके हैं।

(१) पसीने को बढ़ाकर ताकि जब पसीना सूखेगा तो इस से शरीर के तापमान की कमी होगी।

(२) किसी प्रकार की जलचिकित्सा द्वारा शरीर की बाह्यपृष्ठ से सीधे ही ताप को दूर करना।

पहिले तरीके के लिए कई स्वेद्य (पसीना लाने वाली) औषधियाँ दी जाती हैं। इसके लिए पोटाशियम का सिरकित बहुत अच्छा है। निम्न नुस्खा देना चाहिए।

प्र पोटाशियम सिरकित ग्रेन १५
लाइकर अमोनियाई सिरकित (हलका) ड्राम २
स्पिरिट इथरिस नाइट्रोसाई बूंदें १५
सीरप लिमोनिस .... ड्राम १
एक्वा कैम्फर मिलाओ १ औंस तक

हिदायतें—ऐसी तीन खुराकें। एक खुराक प्रति चार घण्टे बाद।

इस योग में योग का आधार पोटाशियम सिरकित है। स्पिरिट ईथरिस नाइट्रोसाई संयोजक हैं। और एक्वा कैम्फर संवाहक है।

दूसरा तरीका किसी प्रकार की जल-चिकित्सा द्वारा सीधे शरीर की त्वचा से ताप कम करना है। यह तरीका बहुत असर वाला और बहुत लाभकर होता है। आज कल लोग स्वेद्य की जगह इसी तरीके का अधिकाधिक इस्तेमाल करने लग गए हैं। इसके लिए सिर पर ठंडे पानी के कपड़े निचोड़ निचोड़ कर रक्खे जाते हैं। बरफ की बोतलें रक्खी जाती हैं। स्नानों द्वारा

भी तापमान कम किया जाता है। रोगी को पहिले कोष्ण पानी स्नान के लिए दिया जाता है। इस में शनैः २ ठण्डा पानी मिला मिला कर इसका तापमान कम करते जाते हैं। और इसके साथ ही साथ रोगी का तापमान भी लेते जाते हैं। जब रोगी का तापमान आवश्यक डिग्री तक आजाय तो फिर और स्नान कराने की आवश्यकता नहीं होती है।

ज्वरों में बहुधा, निद्रानाश मलबन्ध और हृदय की कमज़ोरी प्रभृति उपद्रव भी हो जाते हैं। इनकी चिकित्सा के विषय में निद्रानाशादि सम्बन्धी अध्यायों में उल्लेख किया जायगा।

टाइफायड् और आम-वातज्वर के विषय में कुछ कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। यद्यपि यों तो बहुत ज्वर हैं जिनका उल्लेख मुझे करना चाहिए। पर मुख्य रूप से इन्हीं दो का उल्लेख करता हूँ।

टाइफ़ायड् ज्वर

टाइफ़ायड् का मौलिक इलाज हमारे पास कोई नहीं है। इसलिए रोगी की शारीरिक शक्ति एवं प्रतिशक्ति को कायम रखना ही हमारा उद्देश्य होता है।

रोगी का चलना फिरना बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। जहाँ पर वह रोगाक्रान्त हुआ हो वहीं उसका इलाज किया जाना चाहिए। परिचारिका बड़ी शिक्षित और कुशल होनी चाहिए। रोगी को मलत्याग के लिए शय्या से नहीं उठने देना चाहिए। इसके लिए शय्यामलाधान (Bedpan) प्रयुक्त करना चाहिए।

मल को फैकने से पहिले भली प्रकार कृमिरहित कर देना चाहिए ताकि रोग अन्य पुरुषों में न फैले।

रोगी की खुराक पर ख़ास ख्याल रखना चाहिए। पहिले केवल द्रव ही दिए जाया करते थे। पर अब कुछ ठोस भी दिए जाने अनुचित नहीं समझे जाते हैं। परन्तु इन ठोस या द्रव भोज्यों में अपच पदार्थ नहीं होना चाहिए। सब सुपच होवें। फलों के बीज गुठलियाँ या अन्दर का सख्त भाग सावधानी से पृथक् किया हुआ होना चाहिए। रोगी की आंतों में व्रण होते हैं। यदि कोई बीज या सख्त चीज़ आंत में चली जाय तो व्रणों के छिद्रित होजाने का डर होता है। रोगी को रोग के अच्छा हो जाने से दस दिन बाद तक मांस या मछली के रसे भी नहीं देने चाहिएँ। यदि रोगी के मल को निरीक्षण करने से यह पता लगे कि रोगी दूध को पचाने में असमर्थ है तो दूध में सोडियम सिट्रेट मिला कर देना चाहिए। सिट्रेट मिलाने से दूध की फुट्टियाँ (Curd) छोटी २ बनती हैं और इस लिए ये आसानी से पच जाता है। या इसे पपायित (Peptonised) करके देना चाहिए। मद्य का प्रयोग अनावश्यक होता है।

औषधियों को लाक्षणिक-चिकित्सा के रूप में बर्ता-जाता है। यदि तापमान बहुत ऊँचा हो तो इसे कम करने के लिए रोगी के सिर या माथे पर कपड़े के टुकड़े या स्पञ्ज निचोड़ २ कर रखने चाहिएँ। यदि रोगी को मलबन्ध (कब्ज़) हो तो भेदक या विरेचक द्रव्य नहीं देने चाहिएँ। परन्तु हर दूसरे दिन एक वस्ति (Enema) देनी चाहिए। यदि अतिसार

हो तो इसे तब तक बन्द करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए जब तक कि ये खतरे वाला न होवे। अगर २४ घन्टों में चार से अधिक दस्त आते हों तो इन्हें बन्द करने का प्रयत्न करना चाहिए नहीं तो बन्द करने की जरूरत नहीं होती है। बन्द करने के लिए निशास्ते और अफीम की बस्ति (Enema) दी जाती है। यदि बस्ति देनी अभीष्ट न हो तो निम्न योग वर्तने चाहिएँ।

प्र बिस्मथ सैलिसिल ग्रेन १५
चार पुड़ियाँ बनाओ।

हिदायतें—ऐसी एक पुड़ी प्रति ६ घन्टे बाद थोड़े से दूध से खाएँ।

इस चूर्ण में दो गुण हैं। एक तो ये ग्राही (Astringent) है दूसरे कृमिहर (Antiseptic) है।

कई बार अम्लीय घोल दिया जाता है।

प्र अम्ल गन्धक सुगन्धित बूंदें १०
टिंक्चर कटेचु बूंदें १५
सीरप जिंजिबेरिस् ड्राम आधा
एक्वा मेन्थे पिप मिलाओ १ औन्स तक
ऐसी चार खुराकें।

हिदायतें—प्रति ६ घन्टे बाद एक खुराक पानी से हल्की करके पिलाओ।

इस नुस्खे में सुगन्धित गन्धकाम्ल (Acid sulphuric aromatic) आधार के तौर पर प्रयुक्त किया गया

है। टिंचर कटेचु संयोजक है। सीरप जिंजर संशोधक और पेप्परमिंट का पानी संवाहक हैं।

या चाक और कटेचु का प्रयोग देना चाहिए।

प्र टिंचर कटेचु बूंदें २०
चाक का मिश्रण मिलाओ १ औंस तक
ऐसी ६ खुराकें।

हिदायतें—प्रति ४ से ६ घन्टे में एक खुराक मिलाओ।

इस नुस्खे में टिंचर कटेचु आधार है। और चाक का मिश्रण संयोजक संशोधक और संवाहक तीनों का कार्य करता है।

(१) आध्मान (Tympanites)—भोजन कम कर देना चाहिए या रोगी को कुछ देर के लिए सर्वथा लंघन (उपवास) कराना चाहिए। यदि अहिफेन अतिसार के बन्द करने के लिए प्रयुक्त की जारही है तो वह भी बन्द कर देनी चाहिए। टर्पेन्टाइन के स्टूप लगाने चाहिएँ। और अन्दर, मुख से भी, टर्पेन्टाइन औषध का, निम्न योग द्वारा प्रयोग करना चाहिए।

प्र तैल टेरिबिन्थ बूंदें १०
मिश्रण बादाम मिलाओ १ औंस तक
ऐसी छे खुराकें।

हिदायतें— प्रति चार से ६ घन्टे में एक खुराक पिलाओ।

टर्पेन्टाइन के तैल की बूंदों का बादाम के मिश्रण में दूध जैसा सफेद घोल (Emulsion) बना लेना चाहिए।

रक्तस्राव (Haemorrhage)— यदि रक्तस्राव होने लगे तो भोजन बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। अहिफेन को मुख द्वारा देना चाहिए। या मौर्फिया के त्वचाधोसूचीवेध देने चाहिएँ । सीसक सिरकित जैसे ग्राही पदार्थ भी लाभप्रद होते हैं।

प्र प्लम्बाइ एसिटेट ग्रेन ३
लाइकर मौर्फाइ एसिटेट बूंदें ३०
सिरकाम्ल का हलका घोल बंदें २०
तिर्यक्पातित जल मिलाओ १ औंस तक
ऐसी चार खुराकें।

हिदायतें—प्रति ६ घन्टे बाद एक खुराक पिलाओ।

इस नुस्खे में सीसक का सिरकित आधार के तौर पर प्रयुक्त किया गया है। ये बड़ा ग्राही पदार्थ है। लाइकर मौर्फाइ एसिटेट संयोजक के रूप में दिया गया है। मौर्फिया प्रशामक भी है । सिरकाम्ल द्रव्यों को आपस में अच्छी तरह घुलाने के लिए मिलाया गया है। इसके इलावा सिरकाम्ल ग्राही होने से संयोजक भी है। तिर्यक्पातित जल संवाही है। सादे पानी को इसलिए नहीं बर्ता गया क्योंकि उसमें अकसर गंधित और कर्बनित होते हैं। और इनकी उपस्थिति सीसक के समासों को निक्षिप्त कर देती है।

छिद्रित-आन्त्र—अर्थात् आंन्त्र में छिद्र हो जाना। ऐसी हालत में शल्यकर्म तुरन्त किया जाना चाहिए । आन्त्र का

छिद्रित हो जाना मेरी समझ में आयुर्वेद के छिद्रोदर का एक भेद माना जा सकता है।

आमवातिकज्वर या तीव्र-आमवात

(Acute rheumatism or Rheumatic fever)

इस रोग की चिकित्सा के तीन उद्देश्य होते हैं।

(१) रोगी की शक्ति को कायम रखना।

(२) दर्द को दूर करना।

(३) उपद्रवों से रोगी की सुरक्षा करना। ख़ास कर हृदय-शोथ।

रोगी की परिचर्या जैसे अन्य ज्वरों में की जाती है वैसे ही इस ज्वर की भी करनी चाहिए। पर क्योंकि रोगी को इस ज्वर में पसीना बहुत आता है इसलिए उसे ऊन के कपड़े पहिनाने चाहिएँ। सर्द हवा से बचाने के लिए कम्बलों को ओढ़ा देना चाहिए। जिन जोड़ों को रोग ने पकड़ा हुआ हो उन्हें रुई से लपेट कर रखना चाहिए। इस बात का ख़ास ख्याल रखना चाहिए कि रोगी को सर्द हवा के झोंके न लगें।

पथ्य—रोगी को उसी प्रकार का भोजन देना चाहिए जैसा कि और सब ज्वरों में देने के लिए लिखा गया है। कोई विशेषता उल्लेख करने योग्य नहीं है।

औषधियाँ—सैलिसिलेट् इस रोग की विशेष औषध है। इसलिए इसे निम्न योग द्वारा दिया जाता है।

प्र	सोडियम सैलिसिलेट्	
	सोडियम बाईकार्ब	प्रत्येक, ग्रेन २०
	नारंग पानक	ड्राम १
	नारंग क्वाथ	मिलाओ १ औंस तक
	ऐसी ६ खुराकें—	

हिदायतें— एक खुराक प्रति चार घन्टे बाद देवें।

इस नुस्खे का आधार सोडियम सैलिसिलेट् है। इसके इलावा सोडियम बाईकार्ब इसलिए दिया जाता है क्योंकि ये भी इस रोग में लाभदायक होता है। चूंकि सैलिसिलेट् शरीर में जाकर अम्लीयता उत्पन्न करने की प्रवृत्ति रखते हैं इसलिए भी सोडियम बाईकार्ब का दिया जाना अच्छा है। उपरोक्त युक्तियों के आधार पर सोडियम बाईकार्ब संयोजक भी हुआ और संशोधक भी। नारंग पानक मिश्रण को स्वादु और रुचि अनुकूल बनाने के लिए है। ये भी एक प्रकार का संशोधक हुआ। इसके बाद नारंग क्वाथ संवाहक का कार्य करता है।

सैलिसिलेट् की मात्रा को कम करके, ज्वर के उतर जाने के बाद भी एक पक्ष पर्यन्त देते रहना चाहिए। अगर ज्वर के बाद शरीर की पाण्डुता (Anaemia) प्रगट हुई हो तो लोह का मेल सैलिसिलेट् के साथ कर देना चाहिए। अकसर इस ज्वर के बाद पाण्डुता उपस्थित होती है क्योंकि ये ज्वर रक्ताणुओं का नाश करता है। निम्न योग बर्तना चाहिए।

प्र	फ़ेराइ एट अमोनिया सिट्रेट्	ग्रेन ५
	सोडियम सैलिसिलेट्	ग्रेन १०

कैलम्बा का क्वाथ मिलाओ १ औंस तक

ऐसी तीन खुराकें—

हिदायतें— दोनों समयों के आहार तथा लघ्वाहार के बाद प्रति चार घन्टे के अन्तर से एक औंस दिनमें तीन बार पियें।

इस नुस्खे में फ़ेराइ एट अमोनिया सिट्रेट् और सोडियम सैलिसिलेट् आधार हैं। कैलम्बाका क्वाथ कड़वा क्वाथ है, और लोहे के साथ अच्छा मिल जाता है। कड़वे क्वाथ भूख अच्छी लगवाते हैं और इसलिए रोगोत्तर कमज़ोरी को दूर करने में लाभदायक होते हैं। इसलिए ये क्वाथ उत्तम संवाहक है। क्योंकि लोहे के समास खाली पेट दिए जाने पर उत्तेजना करते हैं इसलिए इस मिश्रण को लघ्वाहार और मध्यान्ह एवं सायं के आहारों के बाद पीना चाहिए।

अगर जोड़ों में बहुत दर्द हो तो इन पर छाले डाले जातें हैं। या गरम पानी में डाल कर निचोड़ी हुई रुई बांधी जाती है। बहुधा सिर्फ गरम रुई का बांधना ही काफी होता है, छाले डालने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती है।

इसके अतिरिक्त इस रोग में हृदय सम्बन्धी उपद्रवों जैसे हृद्शोथ इत्यादि के हो जाने का बड़ा डर होता है। अतः चिकित्सक के लिए यह बड़ा आवश्यक है कि रोगी को पूर्ण विश्राम की अवस्था में रक्खे। ज्वर के उतर जाने के १५ दिन बाद तक रोगी पर कड़ी निरीक्षा रक्खे। ताकि अगर उपद्रव उत्पन्न होने का कोई भी आसार नज़र आए तो तत्काल उपद्रव-सम्बन्धी चिकित्सा प्रारम्भ की जासके।

तीसरा उद्बोध

वेदना



वेदना को दूर करने वाले पदार्थों को निर्वेदनक कहना अनुचित न होगा। इस उद्बोध में इन्हीं निर्वेदनकों के विषय में विचार किया जायगा।

रोगी के अंग को ऐसी स्थिति में रखना चाहिए कि रोगी कम से कम वेदना का अनुभव करे। वेदना की जगह पर कई बार छाले डालने की या जगह को उत्तेजक दवाइयों से लाल करने की ज़रुरत होती है (Counter irritation)। बहुधा वत्सनाभ, बेलाडोना प्रभृति दवाइयों के लेप लगाने आवश्यक होते हैं। इन दवाइयों के लेप जिस स्थान पर लगाए जाते हैं ये वहाँ की वातनाड़ियों के सिरों पर असर करके उन्हें संज्ञाग्रहण के कार्य में असमर्थ कर देते हैं। आहिफेन का प्रयोग स्थानिक रूप में नहीं किया जा सकता है। क्योंकि इसका असर वातनाड़ियों के सिरों पर नहीं होता है। परन्तु संज्ञाग्रहण के मस्तिष्कान्तर्वर्ती केन्द्र पर होता है। अतः इसे मुख द्वारा देते हैं या इसके एल्केलायड् मौर्फिया को त्वचाधोसूचीवेध द्वारा देते हैं।

आजकल निर्वेदनकों के तौर पर कोलतार से बनाए हुए और रासायनिक विधियों द्वारा क्रियाशालाओं में तैयार हुए हुए पदार्थों को प्रयुक्त किया जाता है। इनमें से कुछ पदार्थ निम्न हैं। एण्टिफेब्रिन मात्रा १ से ३ ग्रेन तक। फिनेस्टिन मात्रा ५ से १० ग्रेन तक। एण्टिपाइरिन मात्रा ५ से २० ग्रेन तक। पाइरेमिडौन मात्रा ५ से १० ग्रेन तक।

इनमें से ऐण्टिफेब्रिन अपने निर्वेदनक गुण में सबसे अधिक प्रभाव रखती है पर दिल को घटाती (Depressant) और रक्तसंचार को शिथिल करती है। इसके अतिरिक्त रक्त के रक्तरञ्जक (Haemoglobin) से मिलकर मेट-हिमोग्लोबिन बनाती है। फिनेस्टिन सबसे कम दिल पर असर करती है और इसलिए इसके सेवन से दिल नहीं घटता है। एण्टिपाइरिन में यह अच्छा गुण है कि ये घुलनशील है और पाइरेमिडौन में यह कि ये निर्वेदनक होते हुए भी विषमय प्रभाव से शून्य है।

इनकी प्रयोगविधि यह है कि इन्हें चूर्ण, गोली या कैशेट् में दिया जाता है और इनके दिल घटाने वाले प्रभाव को दूर करने के लिए इनके साथ कैफीन सिट्रेट् को २ से १० ग्रेन की मात्राओं में मिला दिया जाता है और यदि दवाई खा लेने के बाद कोई गरम द्रव पी लिया जाय तो दवाई का असर और भी अच्छी तरह होता है।

एस्पिरिन या एसिटिल् सैलिसिलिक अम्ल एक और पदार्थ है जो कोलतार से उत्पन्न हुआ हुआ नहीं पर निर्वेदनक गुण को रखता है। इसके दूसरे नाम से इसकी उत्पत्ति स्पष्ट है।

इसकी गोलियाँ मिलती हैं। पर खाने से पहिले इन्हें चूरा करके पानी की सहायता से निगल लेना चाहिए। यहाँ पर यह स्मरण रहे कि एस्पिरिन अन्दर जाकर अम्लीयता करती है। इसलिए इसे भरे पेट लेना चाहिए। या इसके साथ ही थोड़ा सा सोड़ा बाईकार्ब ले लेना चाहिए।

अहिफेन और तद्भव पदार्थ—

यदि अहिफेन को मुख द्वारा देना हो तो इसके निम्न योगों में से किसी को दे सकते हैं।—

टिंचर ओपियाई मात्रा ५ से ३० बूंदें।

चूर्ण इपिकाक को मात्रा ५ से १० ग्रेन।

लाइकर मार्फिनी हाइड्रो-क्लोराइडाई मात्रा १० से ६० बूंदें।

यदि त्वचाधोसूचीवेध द्वारा देना हो तो मौर्फियाको १ लव (बटा) ४ से १ लव ६ ग्रेन तक दिया जाता है।

यदि चिरकालिक रोगियों में अहिफेन का प्रयोग करना हो तो मुख द्वारा करना चाहिए। और फिर इसके बाद मुख द्वारा दिए जाने वाले योग में से अहिफेन की मात्रा घटाते जानी चाहिए और कोलतार से पैदा होने वाले निर्वेदनक पदार्थों की मात्रा मिला देनी चाहिए। इस प्रकार हम चिरकालिक रोगियों में भी वेदना दूर करने का प्रयत्न कर सकते हैं। अन्यथा केवल अहिफेन देने से उन्हें अहिफेन की आदत पड़ जाती है और वेदना को दूर करने के लिए अहिफेन अधिकाधिक मात्रा में देनी लाजमी होती जाती है।

चौथा उद्बोध

निद्रा-नाश



द्रा लाने वाली औषधियों को स्वापी (Hypnotic) औषधियों के नाम से पुकारा जायगा। और इस अध्याय में इन्हीं स्वापी औषधियों पर विचार किया जायगा।

निद्रा-नाश मुख्यतः दो प्रकार का है। एक तो सकारण दूसरा अकारण। सकारण, जो किसी कारण कर के हो। ऐसी हालत में कारण को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। उदाहरणार्थ कोई दर्द जैसे सिरदर्द, ज्वर, कास, श्वास-काठिन्य, आध्मान, इत्यादि कारण हो सकते हैं। कारण से मतलब किसी शारीरिक कारण से है। दूसरा अकारण वह जिसमें कोई शारीरिक कारण न हो। यह भी दो प्रकार से होता है। या तो किसी प्रकार की चिन्ता से या खुद ब खुद ख्याल करने से कि नींद तो जाती रही अब कैसे आएगी। खुद ब खुद ख्याल उन रोगियों को होता है जिन्हें सकारण निद्रानाश रहा हो और अब कारण तो दूर हो गया, पर निद्रानाश अवशिष्ट रह गया हो।

उन्हें ये ख्याल कि 'निद्रा नहीं आएगी। निद्रा तो अब आती ही नहीं' कारण के दूर होजाने पर भी निद्रा नहीं आने देता है।

चिकित्सा भी इसलिए दो प्रकार की होती है। एक तो कारणोन्मुखी। अर्थात् कारण को दूर करके निद्रा लाने वाली। जिसे दर्द की वजह से निद्रा न आती हो उसे दर्द मिटा देने पर निद्रा आजायगी। जिसे खाँसी और श्वास-काठिन्य के कारण निद्रा न आती हो उसकी खाँसी और श्वास-काठिन्य दूर कर देने पर निद्रा आजायगी।

दूसरी चिकित्सा अकारण निद्रा नाश की है। इसमें रोगी के विचारों को दृष्टि में रखते हुए उसकी चिकित्सा की जाती है। ये चिकित्सा वैचारिक-चिकित्सा (Psychological treatment) के अन्तर्गत समझनी चाहिए। पर इस वैचारिक चिकित्सा को औषधियों की मदद दी जाती है और इस प्रकार चिकित्सक निद्रा-नाशको दूरकरने में सफल-प्रयत्न होता है।

रोगी निद्रा-नाश का बड़ा भयंकर चित्र (अपने मानसिक जगत् में) खींच रहे होते हैं। वो ये सोचते हैं कि अगर इसी तरह उन्हें निद्रा न आती रही तो वो पागल हो जायँगे या मर जाएँगे। पहिले तो उन रोगियों के दिलों पर यह विश्वास जमा देना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक निद्रा की मात्रा बहुत थोड़ी है। आप लोग इस मात्रा से बहुत अधिक निद्रा लेते हैं। दूसरे आँखें बन्द करके जागे हुए भी पूर्ण विश्राम लेना निद्रा की आवश्यकता को बहुत हद तक पूरा कर देता है। इसलिए इस विश्राम की उपस्थिति में निद्रा-

नाश होते हुए भी मृत्यु का या पागल होजाने का कोई ख़तरा नहीं है। उपरोक्त बात रोगी के दिल में अच्छी तरह घर कर जाय तो चिकित्सक को ये समझना चाहिए कि उसने आधा मैदान मार लिया है। रोगी अकसर अपने आप को ये कह कर कि नींद नहीं आती है, नींद नहीं आएगी नींद को प्राप्त करने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि उन्हें नींद का फ़िकर हटा दिया जाय तो फिर उपरोक्त फ़िकर के अभाव में उन्हें थोड़ी बहुत नींद आने लग जाती है जो उन्हें इस बात का प्रोत्साहन दिलाती है कि अब बिमारी दूर होने लग गई है। ये रोगी बिस्तरे पर सोने के लिए जाने से पहिले ही ये सोचने लगते हैं कि अब बिस्तरे पर चलते हैं पर नींद नहीं आने की। उनके इस विचार की ठठोली करना लाभकर होता है। और चिकित्सक द्वारा की गई ऐसी ठठोली इन आधिग्रस्त (मानसिक रोगों से ग्रस्त) रोगियों में निहायत ही फायदे-मन्द होती है।

यदि घर की चिन्ताओं से निद्रानाश हुआ हुआ हो तो रोगी को घर से दूर कहीं भेज देना लाभकर होता है या अगर रोगी के लिए विशेष रूप से वैचारिक चिकित्सा किसी वैचारिक-चिकित्सालय में करवानी आवश्यक हो तो उसे ऐसे चिकित्सालय में प्रविष्ट होकर चिकित्सा करानी चाहिए। और यदि उपरोक्त दोनों हालतें मौजूद न होवें तो चिकित्सा रोगी के घर पर ही की जानी चाहिए।

घर में चिकित्सा करते हुए उसका सोने का कमरा अलग कर देना चाहिए। उसमें रात के समय खाने के लिए कुछ पदार्थ होने

चाहिएँ । मनोरञ्जन के लिए दिलचस्प और उत्तेजनारहित उपन्यास होने चाहिएँ । हल करने के लिए छोटी छोटी पहेलियाँ और हँसी मखौल और गल गपौड़ों की पुस्तिकाएँ होनी चाहिएँ । और एकाकी मन बहलाव के साधन ताश के पत्ते होने चाहिएँ । इनसे वो पेशेन्स् (धैर्य) नामी खेल खेल कर एकान्त के घण्टों में भी एकान्त की चिन्ता से दूर हो सकता है। दिन में इसे अपनी हरेक प्रकार की कार्यव्यग्रता का-परित्याग कर देना चाहिए। अपने आपको प्रसन्नचित्त तथा चिन्ता रहित रखना चाहिए। मनभावना सुपच और स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन खाना चाहिए। मस्तिष्कोत्तेजक चाय, काफ़ी, तम्बाकू का सेवन बिलकुल छोड़ देना चाहिए या बहुत ही कम कर देना चाहिए।

औषधियाँ—सादी औषधियों का प्रयोग कई चिकित्सक तब तक करना नहीं पसन्द करते हैं जब तक कि इनके बगैर निद्रानाश दूर करना नामुमकिन न हो चुका हो। पर इनका प्रयोग इतनी देर तक नहीं रोकना चाहिए। बल्कि इन्हें पहिले ही देना प्रारम्भ कर देना चाहिए ताकि निद्रानाश की आदत पड़ने से पहिले ही निद्रानाश को दूर किया जा सके। और इस हद दर्जे की निद्रानाश वाली हालत की नौबत ही न पहुंचे। औषधियों के प्रयोग से चिकित्सक अकसर इसलिए कतराते हैं क्योंकि निद्रानाश अगर शीघ्र ही दूर न हो तो फिर औषध की आदत पड़ जाती है। पर विचारवान् वैद्य को पता होना चाहिए कि औषध की आदत से निद्रानाश की आदत अधिक दुखदायी और ख़तरे वाली होती है।

स्वापी औषधियों को चूर्ण या द्रव रूप में दिया जा
है। इनका सेवन गरम पानी के अनुपान के साथ होना चाहि
ऐसा करने से औषधि शीघ्र ही जज़्ब हो जाती है। इस
अतिरिक्त औषध सेवन काल में रोगी की आंते वृक्क तथा त्व
खूब कार्य करते हुए होने चाहिएँ ताकि शरीर से औषध का प
त्याग भी शीघ्रता से होता रहे।

यों तो बहुत सी स्वापी औषधियाँ हैं पर इस अध्य
में निम्न स्वापी औषधियों पर ही विचार किया जायगा।

निम्न औषधियों को स्वापन शक्ति की अधिकता
अनुसार क्रम पूर्वक रक्खा गया है। वो औषधि जो पहिले दी
है, इसके बाद की लिखी हुई औषध से स्वापन में कम श
रखती है।

ब्रोमाइड—केवल साधारण या मामूली निद्रानाश व
रोगियों में सफल होते हैं। और तब भी इन्हें पूर्ण म
(आधे ड्राम की) में हलका घोल बना कर देना पड़ता है
अमोनियम ब्रोमाइड सब ब्रोमाइडों में सबसे अधिक उत्तम है

यूरिया और ब्रोमीन के समास—जैसे एडेलिन, ब्रोमाइ
से १० गुणा शक्ति रखते हैं। मात्रा ५ से १० ग्रेन है। साधार
या कम उग्र निद्रानाश के रोगियों में सफल होते हैं। बहुत ज
जज़्ब हो जाते हैं और करीबन चार घण्टे तक की गहरी न
लाते हैं। इसके बाद नैसर्गिक नींद जारी रहती है और अग
दिन रोगी पर कोई बुरा प्रभाव हुआ २ भी नहीं मिलता है

इनसे कोई ख़तरा नहीं होता है। और इसलिए ये निःशंक होकर बच्चों को भी दिए जा सकते हैं।

ट्रायोनल और सल्फोनल—इनकी मात्रा १० से ३० ग्रेन है। ट्रायोनल अधिक सेफ (Safe) है। उन रोगियों में जिन्हें थोड़ी सी नींद आकर जाग आ गई हो पर दुबारा नींद न आती हो यही ट्रायोनल देना चाहिए।

क्लोरल—इसे कम प्रयुक्त करते हैं। पर यह अच्छा स्वापी द्रव्य है। इसे हृदय की दीवार की विकारमय अवस्थाओं में नहीं देना चाहिए। इसे देते हुए पानक के रूप में प्रयुक्त करते हैं। पानक के १ से २ ड्राम तक दिए जाते हैं। और किसी सुगन्धित जल से पानक को हलका करके पिलाना चाहिए क्योंकि क्लोरल आमाशय में जाकर अगर सान्द्र अवस्था में हो तो उत्तेजना या क्षोभ पैदा करता है।

क्लोरल एमाइड्—इस का असर धीरे २ होता है। इसे ½ से १ ड्राम की मात्रा में देते हैं।

बार्बिट्यूरिकाम्ल वाले स्वापी—बार्बिटोन (या वैरोनल) और सोडियम बार्बिटोन (या मैडिनल) इसी समूह के हैं। इन की मात्रा ५ से १० ग्रेन है। मैडिनल शीघ्र घुलन शील है अतः जल्दी जज़्ब होता है।

ल्यूमिनौल और सोडियम ल्यूमिनौल भी इसी बार्बिट्यू-रिकाम्ल के समूह के हैं। ये बार्बिटोन से अधिक शक्ति वाले निद्रा-

हो जाने से रक्षा करना होता है। इस हृदय एवं वातिक–दौर्बल्य को पैदा करने वाले बहुत से लक्षण एवं कारण रोगी में उपस्थित होते हैं। जैसे—वेदनाएँ, कास, निद्रानाश, श्वास प्रश्वास की रुकावट, और सब से अधिक दुर्द्धर्ष विषसंचार (Toxaemia) हैं। इन में से पहिले तीन का तो जहाँ तक हो सके कुछ चारा या निस्तारा कर सकते हैं पर पिछले दो के लिए तो लाचार ही होते हैं। इन पर काबू पाना कतई नामुमकिन होता है। इस लिए हृदय-कार्यावरोध को न होने देना और निद्रा को बनाए रखना ही निमोनिया की चिकित्सा के दो मुख्य उद्देश्य होते हैं।

साधारण परिचर्या—चतुर और बुद्धिमान परिचारिका की परिचर्या अत्यन्त अपेक्ष होती है। पर रोगी गृह के वातायन (Ventilation) का विशेष ख्याल रखना चाहिए। फ़लालैन के कपड़े की कुरती पहिनाने से पहिले रोगी को गैमगी रुई की जाकट पहिनानी लाभकर होती है। इस गैमगी जाकट (Gamgee jacket) का मुंह छाती की ओर न खुल अगर पीछे की ओर खुले तो बेहतर होता है। कई हस्पतालों में रोगी को ढासना या टेक लगवाकर लिटाते हैं। पर जब तक कि रोगी खुद ऐसा करवाना न चाहे ऐसा करना फ़िज़ूल होता है। और रोगी को बिलकुल लिटाए रखना ही अधिक अच्छा होता है। रोगी को जहाँ तक हो सके अपनी थोड़ी सी थोड़ी शक्ति को भी व्यय होने से बचाना चाहिए इसके लिए चिकित्सक को निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(क) रोगी स्वयं भोज्य पदार्थ न पीवे परन्तु परिचारिका

या परिचारक पिलावे।

(ख) आवश्यक बातों को करने के अतिरिक्त कोई बातचीत न करे।

(ग) रोगी की परीक्षा एक बार ही (रोगविनिश्चयार्थ) करनी पर्याप्त है। बारम्बार करके उसे ख़ामख़ा थकाना या तंग नहीं करना चाहिए।

पथ्यापथ्य—रोगी की खुराक पेय होनी चाहिए। पर उसे पिला पिलाकर उचित से अधिक भोजन नहीं कराना चाहिए। चूंकि रोग थोड़े काल तक रह कर समाप्त होजाने वाला होता है इसलिए रोगी लघ्वाहार पर ही गुज़ारा कर सकता है। खाण्ड किसी न किसी रूप में ज़रूर देनी चाहिए। ये बड़ी हितकर होती है। एक ओर जहाँ ये हृदय के लिए पौष्टिक भोजन है वहाँ साथ ही उपवासजन्य (आँशिकोपवास से तात्पर्य है।) अम्लीयता (Acidosis) को भी दूर करती है। मद्य का प्रयोग प्रत्येक रोगी में करना ज़रूरी नहीं होता है। इसे इस रोग में उन्हीं हालतों में प्रयुक्त किया जाता है जिनमें कि ज्वरा-ध्याय में लिख आए हैं।

औषधें—निमोनिया के बहुत से रोगियों में विशेषतः शिशु रोगियों में चिकित्सा औषधियों के बगैर भी की जा सकती है। पर चूंकि रोगियों को संतोष के लिए कि वे दवाई खा रहे हैं कुछ न कुछ देना ही होता है इसलिए एक साधारण स्वेद लाने वाला मिश्रण जैसा कि ज्वराध्याय में लिख आए हैं देना चाहिए।

जिन रोगियों में हृदय के उचित कार्य करने में असमर्थ होजाने की संभावना हो, तो उनमें हृदय की कार्याक्षमता के द्योतक लक्षणों के प्रगट होने से पूर्व ही हृद्-संतानक (Heart tonics) देने प्रारम्भ कर देने चाहिएँ। उदाहरणार्थ प्रौढ़ आयु के (Middle age) के अधिकांश रोगी, वृद्धावस्था के सब रोगी और वे सब रोगी जिनमें रक्त दबाव कम हो, या हृदय की गति तीव्र व अनियमित हो, या जिनमें प्रभूत विषसंचार स्पष्ट हो, निश्चय ही हृदय की कार्याक्षमता के लक्षण प्रगट करने वाले होते हैं। दो हृदय प्रतानक मुख्य हैं। एक डिजिटेलिस्, दूसरा स्ट्रोफ़ेन्थस्। दोनों में ये फ़रक है कि डिजिटेलिस का असर धीरे २ होता है और स्ट्रोफ़ेन्थस का जल्दी। पर स्ट्रोफ़ेन्थस का ऐसा योग मिलना कठिन होता है जो कि औषध गुणों की दृष्टि से विश्वसनीय हो।

टिंचर डिजिटेलिस को १० बूंदों की मात्राओं में प्रति चार घण्टे बाद दिया जा सकता है। इसे स्वेदक मिश्रण में मिलाया जा सकता हैं या एक्वा क्लोरोफार्म के १ औंस में मिला-कर दिया जा सकता है।

अगर टिंचर स्ट्रोफ़ेन्थस को प्रयुक्त करना हो तो इसे किसी भी मिश्रण के रूप में न प्रयुक्त करना चाहिए। इससे इसके विश्लिष्ट होने का डर रहता है। इसके लिए टिंचर की पांच बूंदें प्रति चार घण्टे बाद थोड़े से पानी में घोलकर देनी चाहिएँ।

यदि हृदय की सम्पाती कार्याक्षमता दूर हो सकनेवाली होती है तो इस चिकित्सा से दूर हो जानी चाहिए पर वस्तुतः संक्रामक रोगों में हृदय इन चिकित्साओं से अपनी स्वस्थावस्था

की कार्य-क्षमता को अपनाने में असमर्थ होता है। अगर कार्या-क्षमता सद्योपाती हो तथा रोगी डिजिटेलिस् व स्ट्रोफ़ेन्थस् का सेवन न कर रहा हो तो उसकी शिरा में १/२०० ग्रेन स्ट्रोफ़ेन्थीन का सूचीवेध कर देना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र फ़ायदा होता है। इसके लिए स्ट्रिकनीन के १/६० ग्रेन का त्वचाधोसूचीवेध भी करते हैं। जैतून के तेल में घुले हुए १॥ से ३ ग्रेन कपूर को भी इसी उद्देश्य से पेशी-सूचीवेध द्वारा दिया जाता है। कपूर के ईथर में बने हुए घोल को भी इसी उद्देश्य से दिया जाता है। इस बात का निश्चय करना कि इन पिछले स्ट्रिकनीन और कपूर वाले प्रयोगों में से कौन कहाँ तक लाभकर है कठिन है। इसके अतिरिक्त आजकल कार्डियोज़ोल को भी बहुत देने लगे हैं।

मद्य को भी हृदय की उत्तेजना के हेतु कई चिकित्सक देते हैं। पर ये हृदय पर मुख्य रूप से प्रभाव नहीं करती है। चूंकि ये हृदय के कार्य को घटाती है अतः हृदय को आराम पहुँचाती है। इसलिए इसे गौण (Indirect) रूप से हृदय को लाभ देने वाली मान सकते हैं।

दूसरा मुख्य उद्देश्य निमोनिया में रोगी को नींद लाने का होता है। पर न तो नींद का अधिक लाना सेफ़ होता है और न हम इस प्रकार की गाढ़ निद्रा को इस रोग में ला ही सकते हैं। इस निद्रलता के उद्देश्य से सब से अधिक बर्ती जाने वाली औषधि मौर्फ़िया है। रोग की प्रारम्भिक अवस्थाओं में इसके १/४ ग्रेन का त्वचाधोसूचीवेध देने से चिकित्सक को नहीं हिच-

किचाना चाहिए। अगर रोग के शुरू के दिनों में रोगी काफ़ी निद्रा प्राप्त करता रहा हो तो अन्त के दिनों में अपेक्षया अधिक आसानी से रोग का मुकाबला कर सकने में समर्थ होता है। रोग के पाँचवे दिन के बाद मौर्फिये का प्रयोग करना सेफ नहीं होता है। इस नियम की कई अपवादरूप अवस्थाएँ भी हैं। अब यह प्रश्न होता है कि रोग की बाद की अवस्थाओं में निद्रा लाने के लिए क्या देना उत्तम है? इसके लिए पहिले क्लोरल दिया जाया करता था। पर अब नहीं देते हैं। अगर देना ही हो तो इसके १५ से २० ग्रेन तक देने अच्छे होते हैं। डाक्टर बालफोर ने निमोनिया का इलाज करते हुए ये नियम बनाया हुआ था कि १० ग्रेन क्लोरल और १० बूंदे टिंचर डिजिटेलिस के एक मिश्रण में मिलाकर प्रति चार घन्टे बाद दिए जाँय। इस योग के देने का उनका यह अनुभव था कि रोगी इस से काफ़ी नींद प्राप्त कर लेते थे।

पैरल्डिहाइड् का देना सब से बेहतर है। पर इससे बहुत बदबू आती है और बदज़ायका होता है। इसे अकसर आवश्यकता से कम मात्राओं में दिया जाता है, मुख द्वारा इसके दो ड्राम दिए जाने चाहिएँ। और इसे दूध में मिला कर या बर्फ वाले पानी में मिलाकर और नारंगी के शर्बत से सुवासित करके देना चाहिए। अगर गुदा द्वारा देना हो तो इसकी मात्रा ३ से ४ ड्राम की है। इस हालत में इसके उपरोक्त ३ या ४ ड्राम, ६ औंस निशास्ते के म्यूसिलेज से मिला कर देने चाहिएँ। देते हुए इस औषध (पैरल्डिहाइड्) को देखलो कि ये बहुत पुरानी बनी हुई

न हो। इस ऐतियात के लिए कि गुदा द्वारा देते हुए गुदा के मुख पर क्षोभ या उत्तेजना न हो वेज़लीन लगा देनी चाहिए।

निमोनिये का तीसरा लक्षण जिसके प्रति चिकित्सक का ध्यान आकर्षित होना चाहिए छाती की दर्द है। उपर जो निद्रार्थ मौर्फिये के सूचीवेध बताए हैं इस दर्द को बहुत फ़ायदा पहुंचाते हैं। और वस्तुतस्तु इसी दर्द को दूर करके ही निद्रा लाने में कामयाब होते हैं। पर इन सूचीवेधों के इलावा राई के पलस्तर लगाने भी फ़ायदेमन्द होते हैं। आज कल जो फ़्लोजस्टीन का पलस्तर निकला है इसमें केओलीन होती है। यह निमोनिये में राई के पलस्तर जितना असर नहीं दिखाता है।

निमोनिये के रोगी को अगर मलबन्ध हो तो उसे विरेचन नहीं देने चाहिएँ। अगर रोग के बिलकुल प्रारम्भ में मलबन्ध हो तो विरेचन देना नुकसान-दे नहीं, पर बाद में तो बहुत हानिकर है। अगर दस्तों के लिए बेड्पान लगाएँ तो रोगी को बहुत तकलीफ़ होती है और इससे रोगी को हिलने जुलने के कारण श्रम भी बहुत होता है। निमोनिये में रोगी को ज़रा सी श्रान्ति देना भी हानिकर होता है। इसलिए विरेचन नहीं देने चाहिएँ। रोगी बड़ी मामूली सी ख़ुराक खा रहा होता है अगर टट्टी न आए तो कोई बड़ी चिन्ता नहीं होनी चाहिए। पर अगर अध्मान हो जाए तो फिर फ़्लेटस् ट्यूब चढ़ाना और एनीमा (वस्ति) देना उचित होता है।

निमोनिये के रोगी में रोगी को श्वासरोध भी होता है। पर इसे दूर करना असंभव होता है। हाँ यदि इसके कारण

हृदय के दाएँ भाग में रक्तापूर होजाय तो फिर शिरावेध (Venesection) करना लाभकर होता है। १५ से २० औंस तक खून के निकाले जा सकते हैं।

रोगी की खाँसी रोगी को अकसर बहुत तकलीफ-दे नहीं होती है। पर अगर रोगी का थूक बहुत गाढ़ा हो और बाहर निकालने में कठिनाई होती हो तो डिजिटेलिस् के मिश्रण में दो तीन ग्रेन पोटाशियम आयोडाइड् के मिलाए जा सकते हैं।

उपरोक्त विचार के इलावा दो और इलाज हैं जिन पर टिप्पणी देनी आवश्यक है। एक तो एण्टि-निमोकोक्कल सीरम के सूचीवेध। और दूसरे ओषजन के उच्छ्वसन। इनके विषय में कुछ भी विस्तार से नहीं दिया जा सकता है अतः उल्लेख मात्र कर दिया है।

चिरस्थायी हृद्-कापाटिक तथा हृद्पेशी-सम्बन्धी रोगों में पाए जाने वाले मन्दोद्भूत हृद्कार्यावरोध की चिकित्सा—

इस मन्दोद्भूत हृद्कार्यावरोध की चिकित्सा दो प्रकार की है। एक तो यह कि इस प्रकार पैदा होने वाला कार्यावरोध पैदा होने से पहिले रोकने की चेष्टा की जाय। अर्थात् उसे न पैदा होने दिया जाय व जहाँ तक हो सके धीरे २ पैदा होने दिया जाय। दूसरे यह कि पैदा हुए कार्यावरोध को दूर किया जाय।

प्रथम प्रकार की प्रतिषेधात्मक चिकित्सा में सबसे जरूरी यह है कि रोगी को उस श्रम से अधिक श्रम न करने दिया जाय, जितना कि उसका रोगी-हृदय झल सकता है। इस श्रम

का निश्चय आसानी से किया जा सकता है। क्योंकि इस श्रम की सीमा पहुँचने पर रोगी में कार्यावरोध के लक्षण प्रगट होने लग पड़ते हैं। श्रम से खाँसी, श्वास-काठिन्य आदि होने लग जाते हैं। तो इस श्रम का पता करके रोगी के जीवन को इस प्रकार नियमित करना चाहिए कि वह कभी भी इस श्रम की सीमा को उल्लंघन न करने पाए और सदा इस मर्यादा के अन्दर ही रहे। कहते हैं कि अगर रोगी घुड़सवारी कर सकता हो तो उसे सिर्फ चलकर ही सैर करनी चाहिए। अगर खड़ा हो सकता हो तो बैठे रहना चाहिए। अगर बैठ सकता हो तो लेटे रहना चाहिए इत्यादि। अर्थात् जितना अधिक श्रम वाला कार्य कर सकता हो उससे कम श्रेणी के श्रम वाले कार्य तक ही रहना चाहिए ताकि श्रम की सीमा दूर ही रहे। रोगी को दिन के २४ घण्टों में से कम से कम ६ घण्टे शय्या पर विश्राम लेना आवश्यक है।

रोगी का भोजन—(१) रोगी के भोजन में वसामय पदार्थ और द्रव जहाँ तक कम हो सकें होने चाहिएँ। (२) रोगी को ऐसा भोजन देना चाहिए कि उसे आध्मान की शिकायत न हो।

औषधें—सब से उत्तम ज्ञात औषध, डिजिटेलिस् है। अन्धाधुन्ध सब हृद्कापाटिक रोगों में इसे नहीं बर्तना चाहिए। निम्न अवस्थाओं में इसका प्रयोग किया जाता है।—

(१) बहुत से हृद्-पेशी-प्रतिजन्यता वाले रोगों में जब कि हृदय के अपने कार्य को करने में अक्षम हो जाने का अंदेसा हो।

(२) वाम हृदयद्वार के रोगों में जब कि ग्राहककोष्ट का फरफरायन (Fibrillation) भी साथ हो।

डिजिटेलिस् शरीर में इकट्ठी हो जाने वाली (Cumulative) औषध है। और इसलिए ये जरूरी है कि इसकी मात्राओं पर पूरा २ ध्यान दिया जाय। इसके टिंचर की १० बूंदें सवेरे और शाम बिल्कुल सेफ हैं और रोग के दूर करने में भी खूब असर रखती हैं। हृद्कापाटिक रोग में जब कि ग्राहक कोष्टों का फरफरायन भी साथ हो तो टिंचर की १० बूंदें दिन में तीन वार देनी चाहिएँ।

डिजिटेलिस् में से एक पदार्थ निकाला जाता है इसे डिजिटेलिन कहते हैं। इसके दो रंग के दाने (वटिकाएँ) तय्यार किए जाते हैं। एक गुलाबी और एक सफेद। गुलाबी दानों में डिजिटेलिन का १ लव (बटा) ६०० ग्रेन होता है और सफेद दानों में १ लव २४० ग्रेन। डिजिटेलिन का १ लव २४० ग्रेन, टिंचर की १५ बूंदों के बराबर समझना चाहिए। गुलाबी दानों का एक सवेरे और एक शाम को देना चाहिए। और सफेद दानों का एक ही, २४ घण्टों में एक वार देना चाहिए। रोगी को जल्दी ही तजुर्वा हो जाता है कि इस औषध की कितनी माला उसे मुआफ़क आती है। जिन रोगियों में साथ ही रक्तदबाव की उच्चता वाला रोग भी हो, उन्हें पोटाशियम आयोडाइड् के कुछ ग्रेन प्रतिदिन सेवन करा देने चाहिएँ। यह नहीं कह सकते कि आयोडाइड् किस तरह रक्तदबाव को कम करते हैं पर अनुभव बताता है कि आयोडाइड् ऐसा अवश्य कर देते हैं।

यदि हृदय शरीर के लिए आवश्यक रक्त को रक्त-वाहिनियों में धकेलने में अशक्त हो जाय तो इसे हृदय की कार्या-क्षमता समझनी चाहिए। और जब हृदय कार्याक्षम होजाय तो निम्न प्रकार चिकित्सा करनी चाहिए। नोट्—उपरोक्त चिकित्सा (हृदय के कार्याक्षम होने से पहिले) हृदय के रोगों में भविष्य में होने वाले कार्याक्षम से बचाने के लिए की जाती है।

हृदय के कार्याक्षम होजाने पर की जाने वाली चिकित्सा—इस के अधोलिखित उद्देश्य होते हैं।

(१) हृदय के कार्य को घटा कर उसे विश्राम पहुंचाना।

(२) रक्तसञ्चार की प्रान्तिक बाधा (जैसे सर्वांग-श्वयथु) को दूर करना।

(३) हृदय की आकुञ्चन शक्ति को बढ़ाना तथा प्रसार (Diastole) के अन्तर को बढ़ाना। ताकि हृदय का विश्राम का समय भी बढ़ जाय और उसमें आने वाले रक्त की मात्रा भी बढ़ जाय जिस से उसका आकुञ्चन खूब सशक्तिक हो।

साधारण परिचर्या— रोगी को शय्यारूढ़ रह कर ही पूर्ण विश्राम करना चाहिए। कई रोगियों को बैठा कर या पीठ पीछे टेक लगाकर लेटे रहने में अधिक आराम अनुभव होता है (Orthopnoea)। इन के लिए ऐसा ही इन्तज़ाम कर देना चाहिए। कई रोगियों में जलोदर के कारण लेटे रहना नहीं सुखाता है। अगर ये चाहें तो इन्हें आरामदे कुर्सियों में बिठा कर आराम करवाना चाहिए।

भोजन—हृद्-कार्याक्षमता के रोगियों में तथा जिन्हें सर्वांग श्वयथु हो उनमें, आहार मितराशी का होना चाहिए अगर रोगी अल्पमात्रा में सूखासा भोजन कर सके तो उत्तम है पर रोगी अकसर ऐसा करने में असमर्थ होते हैं। उन्हें द्रव भोजन ही देने लाजमी होते हैं। ऐसी हालतों में दूध दो पाइन्ट तक देना चाहिए दूध को थोड़े २ परिमाणों में कई बार देना चाहिए। और इसकी कुल मात्रा ऊपर बताए हुए २ पाइन्ट के परिमाण से अधिक नहीं होनी चाहिए।

औषधियाँ—डिजिटेलिस् के टिंचर को प्रति दिन १ से १॥ ड्राम की मात्राओं में देना चाहिए। अगर सर्वांगश्वयथु बहुत अधिक हो तो इसके साथ मूत्रल भी प्रयुक्त करने चाहिएँ।

तीन प्रकार के मूत्रल होते हैं।:—

(१) **लवणीय**—(Saline)-ये रक्त में पहुंच कर रक्त के औस्मोटिक दबाव को बढ़ा देते हैं। भौतिक सिद्धान्तों के अनुसार बढ़ा हुआ औस्मोटिक दबाव तन्तुओं सेद्रव की मात्रा को रक्त की ओर खैंचता है। केशिकाओं की दीवारें (Permeable membrane) का कार्य करती हैं। वृक्कों का कार्य रक्त के (Constituents) को निश्चित रखना होता है। इस लिए बढ़ा हुआ द्रव भाग मूत्र द्वारा परित्यक्त हो जाता है। पोटाशियम के वानस्पतिक लवण (सिरकित सित्रित आदि) इस श्रेणी के मूत्रलों के अच्छे उदाहरण हैं।

(२) **उत्तेजक मूत्रल**—ये वृक्कों की रक्त वाहिनियों को फैलाते हैं जिससे अधिक द्रव मूत्र रूप में रिसता है।

कैफ़ीन, कैफ़ीन के समास और स्कोपेरियम इसी श्रेणी के मूत्रल हैं।

(३) (Cardio-vascular) (हृदय और वाहिनियों सम्बन्धी)—ये वृक्कों में होने वाले रक्त के प्रवाह की मात्रा को बढ़ाते हैं। हृदय की क्रियाशीलता बढ़ाते हैं, इससे हृदय अधिक कार्य करता है और परिणाम रूप वृक्कों में अधिक रक्त का प्रवाह होता है। और वृक्क अधिक रक्त में से एवं अधिक रक्त के दबाव के कारण अधिक मूत्र बनाते हैं। इस प्रकार के मूत्रलों के उदाहरण डिजिटेलिस और स्क्विल हैं।

मूत्रल मेल के साथ, दल बन्दी के रूप में अधिक प्रभाव वाले होते हैं। इस उद्देश्य से निम्न प्रयोग देना चाहिए। ये इन मूत्रलों की दलबन्दी का अच्छा उदाहरण है।

प्र पोटाशियम एसिटेट ग्रेन २०
टिंचर डिजिटेलिस् बूंदे १५
सिरप लिमोनिस ड्राम १
स्कोपेरियाई का क्वाथ मिलाओ १ औंस तक।
ऐसी तीन खुराकें लाओ।

हिदायतें—एक खुराक थोड़े से पानी में मिला कर प्रति चार घण्टे बाद पियें।

इस नुस्खे में पोटाश का सिरकित और डिजटेलिस् दोनों आधार समझे जा सकते हैं। निम्बू का पानक सुवासक और स्वादु बनाने के लिए है। स्कोपेरियाई का क्वाथ संवाहक

और संयोजक समझना चाहिए। ये योग की मूत्रलता का संवर्द्धक है। कभी कभी इस नुस्खे में पोटाशियम सिरकित की जगह, पोटाशियम अम्लीय सित्रित दिया जाता है।

इस प्रकार मूत्रलों की दलबन्दी ४८ घण्टे में रोगियों में मूत्रलता का प्रभाव दिखा देती है। इतना ही नहीं, पर यह मूत्रलता योग का सेवन बन्द कर देने के बाद भी कुछ दिनों तक जारी रहती है।

कई वार डिजिटेलिस् अभिवाञ्छित मात्रा से अधिक दिया जा रहा होता है। भिन्न भिन्न रोगियों की प्रकृति के अनुसार एक ही मात्रा सब रोगियों में ठीक नहीं होती इस लिए डिजिटेलिस् की एक मात्रा जो एक रोगी के लिए ठीक होती है कई वार दूसरे रोगी के लिए अधिक होती है। इसके जानने के लिए निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिए। जब रोगी की दृष्टि से, योग में उपस्थित डिजिटेलिस् की मात्रा अधिक हो तो रोगी निम्न लक्षण प्रगट करता है।

(क) महास्रोतस् सम्बन्धी उपद्रव, जैसे, वमनेच्छा, वमन, और अतिसार।

(ख) धमनी-धमन कम होते होते ६० से भी कम होने लगता है। ६० से कम होने लगे तो समझो कि डिजिटेलिस् उचित मात्रा से अधिक दिया जा रहा है। इसके इलावा स्पन्दन द्वित्व होने लगता है। इसे युगल-स्पन्दन या (Coupling of beat) कहा जाता है। इसका कारण प्रत्येक स्वस्थ धमन के बाद हुआ

समयानुपूर्वी धमन (Premature systole) होता है।

(ग) मूत्र की मात्रा घट जाती है।

यदि उपरोक्त लक्षण प्रगट होवें तो उपरोक्त मिश्रण दिन में (२४ घण्टे में) केवल तीन बार कर देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जितना आवश्यक हो उतना इसे देना कम कर देना चाहिए।

जिन रोगियों में यकृत् का रक्तापूर (Congestion) बहुत हो उन में पारद के साथ बने हुए डिजिटेलिस् के प्रयोग बहुत लाभ दिखाते हैं। इसके लिए गाई या वेली की वटी जिस में पारदादि वटी के साथ डिजिटेलिस् और और सिल्ला मिलाए हुए होते हैं दी जानी चाहिए।

प्र डिजिटेलिस का चूर्ण
सिल्ले का चूर्ण
पारदादि वटी (ब्लूपिल) प्रत्येक १ ग्रेन। वटी बनाओ।
हि०—ऐसी १ वटी प्रति ६ घण्टे बाद।

इस नुस्खे में डिजिटेलिस् और सिल्ला (Cardio-vascular) मूत्रल है। डिजिटेलिस् के चूर्ण का १ ग्रेन टिंचर डिजिटेलिस् की१०बूंदों के बराबर होता है। ब्लूपिल यकृत् की रक्तापूरता (Congestion) को कम करती है। यदि ब्लूपिल विरेचन का प्रभाव आवश्यकता से अधिक दिखाए तो उपरोक्त योग में इसके स्थान पर ग्रे पाउडर (Pulv. Hydrarg. c. creta) प्रयुक्त किया जा सकता है।

डाइयुरेटिन् (थियोब्रोमीन सोडियम सैलिसिलेट्)— कई वार जब कि डिजिटेलिस् मूत्रलता का प्रभाव दिखाने में असफल हो चुका होता है तो टाइयुरेटिन् कामयाब हो जाती है। डाइयुरेटिन की मात्रा १० से २० ग्रेन दिन में तीन वार है।

आजकल सैलर्गन भी वहुत प्रयुक्त होती है।

मन्दोद्भवी हृदय की कार्याक्षमता में उपरोक्त चिकित्सा के इलावा अवशिष्ट चिकित्सा निम्न लक्ष्यों को दृष्टि में रखकर की जाती है।—

(१) आमाशय के क्षोभ को दूर करना।
(२) पर्याप्त निद्रा लाने की कोशिश करना।
(३) आन्त्रों के क्षोभ को प्रशान्त करना।

(१) आमाशय का क्षोभ वमन रूप में प्रगट होता है। यदि वमन डिजिटेलिस् की वजह से न हो तो इसे आमाशय की अन्तःकला की शोथ से या क्षोभ से उत्पन्न हुआ २ समझना चाहिए। आमाशय की अन्तःकला का क्षोभ पोर्टल रक्तापूर के कारण होता है। ऐसी हालत में इस क्षोभ को प्रशान्त करने के लिए बिस्मथ मिश्रण देना चाहिए। इस मिश्रण का वर्णन आमाशय सम्बन्धी उद्बोध में किया गया है। यदि वमन रुकती ही न हो तो डिजिटेलिस् को या तो वटी रूप में या डिजिटेलिन के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए।

(२) पर्याप्त निद्रा लाने के लिए मौर्फिया से अच्छी औषध और कुछ नहीं है। हृदय के रोगियों को मौर्फिया बहुत मुआफ़िक आता है। ये जादू की तरह अपना असर दिखाता है।

इससे दो तीन दिन अच्छी नींद ला दी जाय तो फिर रोगी का हृदय पहिले से बहुत अच्छी तरह कार्य करने लगता है। जिन हृदय के रोगियों में फुफ्फुसों की रक्तापूरता हो उन्हें मॉर्फिया देना खतरे वाला होता है इसलिए उन्हें मॉर्फिया न देकर निमोनिया के इलाज में बताए तरीके से पैरल्डिहाइड् देना चाहिए।

(३) आन्त्रों के क्षोभ को दूर करने के लिए, प्रातःकाल एक लवणीय (Saline) विरेचन देना चाहिए। और अगर यकृत् की रक्तापूरता हो तो पारद का कोई योग प्रयुक्त करना अच्छा रहता है।

ऊपर बताए हुए मूत्रल यदि सर्वाङ्ग-श्वयथु को दूर करने में असफल साबत हों तो फिर मैकेनिकल तौर पर इसे दूर किया जाता है।

जलोदर को उदरवेध से खाली करते हैं। जलोरस् को वक्षोवेध से खाली करते हैं। टाँगों की सोजन को टाँगों की त्वचा में चीरे देकर या उसमें पतली रबर की ट्यूबें लगाकर दूर किया जाता है। रबर की ट्यूबों वाली या चीरों वाली विधि बहुत कम वर्ती जाती है। इस कार्य के लिए त्वचाधोवर्ती तन्तुओं में साउदी की ट्यूबें प्रविष्ट की जाती हैं। इनकी प्रवेश-विधि यहाँ पर लिखनी अभिवाञ्छित नहीं है।

रोगी को ओषजन के उच्छ्वसन भी दिए जाते हैं और अगर जरूरी हो तो यकृत् की रक्तापूरता दूर करने की खातिर खून निकालने के लिए शिरावेध भी किए जाते हैं या जोंकें लगाई जाती हैं।

छठा उद्बोध

कास

निश्श्लेष्मक तथा निःसंकोचक

(Expectorants and antispasmodics)



स कई कारणों से होती है पर यहाँ पर श्वास-प्रणालियों की शोथ से उत्पन्न हुई २ कास पर ही विचार किया जायगा। इसे अंग्रेजी में Bronchitis (श्वास-प्रणालि-शोथ) कहते हैं।

इसमें चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी की शक्ति तथा उसके हृदय की शक्ति को कायम रखना होता है। श्वास की प्रणालियों में भरी हुई बलगम को बाहर निकालना होता है ताकि वे खाली हो जाँय और श्वास प्रश्वास स्वस्थावस्था की तरह होवे। इसके लिए ऐसी औषधियाँ दी जाती हैं जो श्लेष्मा को बढ़ावें और पतला करें। ये पतला श्लेष्मा आसानी से बाहर निकल जाता है। ऐसे औषध द्रव्यों को जो इस प्रकार कास के प्रशान्त करने में लाभप्रद होते हैं निःश्लेष्मक (Expectorant) कहा जाता है। दूसरे प्रकार के वे द्रव्य हैं जो इन

श्वासप्रणालियों में हुई २ अकड़ाँद को दूर करते हैं। इन्हें हम निःसंकोचक (anti-spasmodic) के नाम से पुकार सकते हैं।

परिचर्या—क्योंकि इस कास रोग में रोगी ज्वर से भी पीड़ित होता है अतः रोगी को शय्यारूढ़ करा देना चाहिए। उसे चलने फिरने से रोक देना चाहिए। रोगीगृह का तापमान ६५° फाहरनहाइट का रक्खे रखने की कोशिश करनी चाहिए। और इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि यह तापमान रात्रि में कम न होवे। रोगीगृह का वायुमण्डल तर रहना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि एक छोटी सी पानी भरी कढ़ाई या पतीली में पानी को रख कर के गरम किया जाय। इस प्रकार इस वाष्प बने हुए पानी से वायु तर रहती है परन्तु इस पानी में किसी प्रकार की दवाई डालनी चाहिए या नहीं इसके विषय में विविध चिकित्सकों के भिन्न २ विचार हैं। रोगी को गरम कम्बलों को ओढ़कर रहना चाहिए। पर कम्बल बहुत भारी या बहुत अधिक नहीं होने चाहिएँ। कमरे का वातायान (वायु का आवागमन या (Ventilation) भलो प्रकार होना चाहिए ताकि कमरे की वायु स्वच्छ और शुद्ध बनी रहे।

प्रत्युत्तेजना (Counter-irritation) के बारे में यहाँ दो चार शब्द कह देना अप्रासंगिक न होंगे। शरीर में जहाँ दर्द हो उसके ऊपर त्वचा पर कोई ऐसा उत्तेजक पदार्थ जो उस त्वचा के अन्दर उपस्थित रक्तवाहिनियों या केशिकाओं का रक्तापूर (Congestion) करके उस जगह को लाल

करदे लगाकर प्रत्युत्तेजना की जाती है। अनुभवी चिकित्सकों का अनुभव बताता है कि इस प्रत्युत्तेजना का बड़ा लाभ होता है और दर्द जाती रहती है। ये दर्द क्यों काफ़ूर होती है इसका उत्तर देते हुए कई विचारवान् चिकित्सकों ने अपने वैयक्तिक विचार पेश किये हैं। इन विचारों में से दो मुख्य हैं और उन्हें संक्षेप रूप में नीचे उद्धृत किया जाता है।

(१) जब त्वचा की रक्त वाहिनियों में रक्तापूर होता है तो उस त्वक्प्रदेश की गहराई में वर्तमान अवयव की रक्त वाहिनियाँ कुछ खाली होती हैं या उन में रक्त की मात्रा कम हो जाती है जिससे उनकी (अवयवों की) रक्तापूरता (Congestion) के दूर हो जाने से उनकी थैली का (जिस में कि वो बन्द होते हैं) तनाव घट जाता है और इस प्रकार दर्द शान्त हो जाती है। उदाहरणार्थ यकृत् को लीजिए। हृदय के कार्यावरोध रोग में (कई पाश्चात्यायुर्वेद के लेखकों ने Heart failure को हृदय-कार्यावरोध नाम दिया है। मैंने उसी नाम से इस रोग को प्रदर्शित किया है।) यकृत् रक्त से आपूर (Congested) हो जाता है और उदर के सामने पर्शुका-पञ्जर के नीचे दाहिनी ओर यकृत के सामने दर्द होती है। इस दर्द का संभवनीय कारण ये है कि रक्तापूर से फूला हुआ यकृत् इसके चारों ओर वर्तमान उदर-पर्यावरण-कला की (यकृत् के चारों ओर वाली) गुथली को तनता है और इस तनाव के कारण रोगी को दर्द का अनुभव होता है। अब यदि किसी प्रकार रोगी के यकृत् के रक्तापूर को दूर कर दिया जाय तो ये दर्द शान्त हो जायगी। हम यकृत् के

सन्मुख प्रदेश पर प्रत्युत्तेजना करते हैं और दर्द शान्त हो जाती है। यह है पहिला विचार। इसे अभी तक विचार ही समझना चाहिए क्यों कि अभी यह सिद्ध-विचार की श्रेणी में नहीं आया है। जब कोई आयुर्वेद का सेवी परीक्षण के द्वारा सिद्ध कर देगा तो ये सत्य सिद्धान्त समझा जायगा और विचार की श्रेणी से सत्य (Fact) की श्रेणी में आजायगा।

(२) दूसरा विचार प्रतिक्षिप्त-वातनाड़ी-वेदना के सिद्धान्त पर आश्रित है। हमें ये मालूम है कि यकृत् या प्लीहा रुग्ण होते हैं तो रोगी अकसर दाएँ या बाएँ कन्धे में दर्द अनुभव करते हैं। ये दर्द प्रतिक्षिप्त-वातनाड़ी-वेदना होती है। प्रक्षेपी चाप (Reflex arc) पर आश्रित होती है।

जब की अन्तरवयव और उसके सामने के प्रदेश की त्वचा की रक्त वाहिनियों में कोई सम्बन्ध भी नहीं होता तो फिर क्यों अवयव का रक्तापूर कम हो जाता है? इस प्रश्न का पहिला विचार कोई उत्तर नहीं देता है। इस कारण दूसरे विचार का श्री गणेश हुआ। इस विचार के आधार पर हम ये स्पष्ट कर सकते हैं कि रक्तवाहिनियों का सम्बन्ध न होते हुए भी अन्तरवयव का रक्तापूर क्यों कम हो जाता है? वातनाड़ियाँ शरीर के भिन्न २ अंगों की पुष्टि का नियमन करती हैं। अर्थात् वातनाड़ियों द्वारा ये नियमन होता है कि किसी अन्तरवयव को अधिक खून जाय या कम खून जाय। इस बात की सिद्धि किसी शरीर क्रिया-विज्ञान की पुस्तक में देखनी चाहिए। जब अन्तरवयव के सन्मुखवर्ती त्वक् प्रदेश पर कोई उत्तेजक द्रव्य

लगाया जाता है तो उस से त्वक् प्रदेश की वातनाड़ियों के अन्तिम सिरे या छोर उत्तेजित होते हैं। और इन छोरों से जो संज्ञा जाती है वह प्रक्षेपी रूप से (Reflexly) अन्तरवयव की रक्तवाहिनियों को सिकुड़ाती है जिस से अन्तरवयव को कम रक्त जाता है और दर्द को आराम होता है। इस विचार ने ये स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि अन्तरवयव की रक्तवाहिनियों का कोई सम्बन्ध उसके सामने की त्वचा की रक्त वाहिनियों से नहीं है पर तो भी अन्तरवयव की रक्तापूरता इस प्रत्युत्तेजना वाली प्रक्रिया द्वारा कम हो सकती है। हम अपने शरीर-क्रिया-विज्ञान के ज्ञान के अधार पर यह जानते हैं कि शरीर के अन्तरवयवों की वातनाड़ियाँ और उनके सन्मुखवर्ती प्रदेश की वातनाड़ियाँ सुषुम्ना में लगभग एकही समता पर पहुंचती हैं इस लिए प्रक्षेपी चाप का बनना सर्वथा स्पष्ट है। इस विचार से यह भी स्पष्ट हुआ कि त्वचा का रक्तापूर उत्तेजना का परिणाम रूप है पर अन्तरवयव के रक्तापूर को हटाने का कारण रूप नहीं है।

अन्त में इतना कहना और ज़रूरी है कि यह भी एक विचार है और परीक्षणों के अभाव के कारण या परीक्षणों पर आश्रित युक्तियों के अभाव के कारण सिद्धान्तों की श्रेणी में परिगण्य नहीं है।

प्रत्युत्तेजना का तीव्र श्वास-प्रणाली-शोथ (Acute bronchitis) की प्रारम्भिक अवस्थाओं में बड़ा लाभ होताहै। प्रत्युत्तेजन करने के लिए अलसी के बीज और राई की पुल्टिसें लगानी चाहिएँ। इन्हें पीठ पर दोनों अंसफलकों के बीच

लगाना चाहिए। इस स्थान पर लगाई हुई पुल्टिसें श्वास प्रश्वास में भी बाधा नहीं डालती हैं और श्वास प्रणालियों के समीप भी होती हैं। इन्हें प्रति तीन घन्टे बाद बदलना चाहिए।

पथ्य—भोजन द्रव पदार्थों का होना चाहिए। द्रव पदार्थ श्वासप्रणालियों के स्राव को बढ़ाते हैं। और हमें यही अभीष्ट होता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो ये कहेंगे कि कफ को पतला करके निकालने में मददगार होते हैं। शेष भोजन-विधि वही है जो कि किसी ज्वर रोगी में वर्ती जानी चाहिए।

औषधियाँ—इसरोग में निःश्लेष्मक (Expectorants) का प्रयोग होता हैं। निःश्लेष्मक औषधियां दो प्रकार की होती हैं। एक वो जो रक्तसञ्चार को शिथिल (Depress) करती हैं और दूसरी वो जो इसे उत्तेजित या उद्धत (Stimulate) करती हैं। इस प्रकार शैथिलिक तथा उत्तेजक दो प्रकार के निःश्लेष्मक होते हैं। मुख्य शैथिलिक निःश्लेष्मक निम्न हैं—

(१) इपिकैकुहाना (२) एण्टिमनि (३) पोटाशियम आयोडाइड् और(४)घुलनशील क्षार(Soluble alkalies) मुख्य उत्तेजक निःश्लेष्मक निम्न हैं—

(१) अमोनियम कर्बनित (२) स्क्विल (३) उड़न शील तैल।

आयोडाइड्, क्षार और तैल सीधे श्वासप्रणालियों की श्लेष्मकला पर असर करते हैं। पर अन्य औषधें आमाशय को व्यवहित करके प्रक्षेपी रूप से (Reflexly) कार्य करती

हैं। अमोनियम कर्बनित एक और प्रकार से भी कार्य करता है। यह मस्तिष्कस्थ श्वास केन्द्र को अधिक उत्तेजन शील (Excitable) बना देता है जिससे निःश्लेष्मीकरण की प्रक्रिया साधारण औषधियों से भी अपेक्षया अधिक होती है। कुचले (कारस्कर या विषमुष्टि) का एल्केलायड् (जिसका नाम स्ट्रिकनीन है) भी श्वास-केन्द्र की उत्तेजन-शीलता को बढ़ाता है इसलिए स्ट्रिकनीन को भी इस अंश में निःश्लेष्मकों में परिगणित करना चाहिए।

तीव्र श्वास-प्रणाली-शोथ (Acute bronchitis) में केवल प्रशामक निःश्लेष्मकों को ही वर्तना चाहिए। निम्न योग लाभदायक होते हैं।

प्र		
	पोटाशियम आयोडाइड्	ग्रेन २॥
	पोटाशियम बाइकार्ब	ग्रेन १५
	सीरप टोलू	ड्राम १

एक्वा एनिसाई मिलाओ १ औन्स तक।

ऐसी चार खुराकें।

हिदायतें—प्रति ३ घन्टे बाद एक खुराक पिलाएँ।

इस नुस्खे में पोटाशियम आयोडाइड् आधार के तौर पर प्रयुक्त किया गया है। इसे बहुत थोड़ी मात्रा में दिया गया है। क्योंकि इस की छोटी मात्राएँ निःश्लेष्मीकरण में अपेक्षया बड़ी मात्राओं के अधिक प्रभावमय होती हैं। पोटाशियम बाइकार्ब (विकर्बनित) एक घुलनशील क्षार है। इसे संयोजक के तौर पर डाला गया है। टोलू का पानक सुस्वादु और सुवासित करने के

लिए है, सो यह संशोधक हुआ। इसके स्थान पर मधुयष्टि की द्रव-रसक्रिया, ग्लिसरीन या वर्जिनियन प्रन के पानक को प्रयुक्त किया जा सकता था। एनिसाई का पानी संवाहक है। इसकी सुगन्ध भी मनोनुकूल होती है तथा इसमें थोड़ा सा उड़नशील तेल भी होता है।

दूसरा योग—

प्र	वाइनम् इपिकाक्	बूंदें १५
	लाइकर अमोनिया एसिटेटिस् (हलका)	ड्राम २
	पानक वर्जिनियन प्रून का	ड्राम १
	एक्वा कैम्फर	मिलाओ १ औन्स तक।

ऐसी ६ खुराकें।

हिदायतें—एक खुराक प्रति तीन घन्टे बाद।

इस नुस्खे में इपिकाक को आधार रूप में प्रयुक्त किया गया है। वाइनम एण्टिमोनियेट् को इसकी जगह प्रयुक्त किया जा सकता था। लाइकर अमोनिया एसिटेटिस् को संयोजक के तौर पर डाला गया है ताकि स्वेद लाकर ज्वर को उतार देवे। वर्जिनियन प्रून योग को सुस्वादु और रोचक बनाने के लिए डाला गया है अतः यह संशोधक है, और एक्वा कैम्फ़र संवाहक है। एक्वा कैम्फ़र खफ़ीफ़सा उत्तेजक भी है।

यदि खांसी बहुत तंग करती हो तो आधा ड्राम 'टिंचर कैम्फर को' का मिलाया जा सकता है। उपरोक्त दोनों योगों में इसे मिला सकते हैं। यदि हृदय की कमज़ोरी या हृदय कार्याव-रोध (Heart failure) के लक्षण प्रारम्भ होने की

आशंका हो तो वैसे ही इलाज करना चाहिए जैसे कि हृद्कार्यावरोध का इलाज निमोनिया के प्रसंग में बताया गया था।

निद्रा-नाश—तीव्र श्वास-प्रणाली-शोथ का निद्रा-नाश अगर थोड़ी सी ह्विस्की और गरम पानी की खुराक शाम के वक्त पिला देने से दूर हो जाय तो हो जाय नहीं तो इसका दूर करना कठिन होता है। इस में मौर्फ़िया का प्रयोग खतरे से बाहर नहीं होता। और अगर गहरी नींद ला दी जाय तो ये भी खतरे वाली होती है। क्यों कि गहरी नींद में रोगी श्वासप्रणालियों में भरी हुई श्लेष्मा को बाहर नहीं निकाल सकता है। और इस लिए वो अन्दर ही जमा होती रहती है। इस लिए जहाँ तक हो सके स्वापी औषधियों को नहीं देना चाहिए। पैरल्डिहाइड् जैसा कि निमोनिया में देने के लिए बताया गया है, प्रयुक्त करना सबसे अधिक नैःशंक्य वाला (Safe) होता है। पर कभी २ डोवर का चूर्ण १० ग्रेन, कैलोमल के आधे ग्रेन के साथ देना बहुत लाभ कर सिद्ध होता है।

जब श्वासप्रणालियों में संकोच या अकडाँद (Spasm) हुई हुई हो तो निःसंकोचक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। जब अकडाँद हुई हुई हो तो श्वास रोग की तरह खांसी उठती है। इसे अंग्रेजी में Bronchitic asthma कहते हैं। निम्न निःसंकोचकों का प्रयोग किया जाता है। बैलाडोना, स्ट्रैमोनियम, लोबीलिया, ग्रिण्डेलिया, नाइट्राइट्, एड्रेनेलीन, मौर्फ़िया और इफ़ेड्रीन।

बैलाडोना, स्ट्रैमोनियम, लोबीलिया और ग्रिण्डेलिया, श्वासप्रणालियों में वर्तमान वातनाड़ियों के छोरों पर कार्य करते हैं। नाइट्राइट् श्वास-प्रणालियों की मांसपेशियों पर असर करते हैं। एड्रेनेलीन प्रसारक सिम्पैथेटिक वाततन्तुओं पर असर करती है। मॉर्फिया मस्तिष्कस्थ श्वास-केन्द्र पर असर करता है।

श्वास (Asthma) रोग से पीड़ित रोगियों में तो निःसंकोचक औषधियों के चूर्ण को जलाने से पैदा हुआ धूम्र उच्छ्वसित कराया जाता है। पर Bronchitic asthma में ऐसा करना उपयुक्त नहीं होता क्यों कि ये धूम्र श्वासप्रणालियों की श्लेष्मकला के लिए बड़ा उत्तेजक होता है। और उत्तेजना द्वारा कला की शोथ बढ़ा देता है या न हुई हुई हो तो उत्पन्न कर देता है। इस लिए ऐसी दशा में निम्न लिखित योग देना चाहिए।

प्र पोटाशियम आयोडाइड् ग्रेन ३
टिंचर स्ट्रैमोनियाई
टिंचर लोबेलियाई इथरिस प्रत्येक बूंदें १०
मधुयष्ठी की द्रव रसक्रिया ड्राम आधा।
सर्पेन्टरी का क्वाथ—मिलाओ १ औन्स तक।

ऐसी चार खुराकें।

हिदायतें—एक खुराक एक गिलास पानी में डाल कर प्रति ६ घण्टे बाद पियें।

इस नुस्खे में आयोडाइड् निःश्लेष्मक के तौर पर कार्य करते हैं। श्लेष्मस्त्राव को बढ़ाते और पतला करते हैं। स्ट्रैमो-नियम और लोबीलिया संयोजक हैं, ये निःसंकोचक का कार्य करते हैं। मधुयष्टि स्निग्ध (Demulcent) गुणवाली और स्वाद्वी होती है अतः संशोधक है। सर्पेन्टरी निःश्लेष्मक संवाही है। इस नुस्खे में लाइकर आर्सेनिकेलिस् की ३ बूंदें मिला देनी फ़ायदे मन्द होती हैं। इसके दो फ़ायदे होते हैं एक तो ये कि ये आयोडाइड् से पैदा होने वाले स्फोटों को नहीं उत्पन्न होने देता दूसरे मस्तिष्कस्थ श्वास-केन्द्र के लिए प्रशामक है।

यदि Bronchitic asthma का दौरा आया हुआ हो तो तब एड्रेनेलीन, एट्रोपीन और मौर्फिया में से किसी एक औषध का प्रयोग करते हैं। एड्रेनेलीन का (१००० में १ का) घोल ३ से ५ बूंदों की मात्रा में त्वचाधोसूचीवेध द्वारा देते हैं। एट्रोपीन का १ बटा १०० हिस्सा एक ग्रेन का, त्वचाधो-सूचीवेध से देते हैं और मौर्फिया का १ बटा ४ हिस्सा एक ग्रेन का, त्वचाधोसूचीवेध द्वारा देते हैं।

एफ़ेड्रीन एक पौदे में से निकलती है जिसे पंजाब में अंसानियां, वट्शूर, चेवा इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। ये चीनी औषध है। इसके गुण एड्रेनेलीन जैसे ही होते हैं। पर फ़रक इतना ही है कि ये अधिक देर तक रहने वाला असर दिखाती है। इसका आधा ग्रेन टिकिया के रूप में मुख द्वारा दिया जाता है।

चिरकालीन श्वास-प्रणाली-शोथ

प्रतिषेधात्मक चिकित्सा का हमेशा ख्याल रखना चाहिए। अर्थात् तीव्र श्वास-प्रणाली-शोथ चिरकालीन में परिवर्तित न होने पावे। सब से उत्तम तो यह है कि रोगी गरम और शुष्क जलवायु का सेवन करे। पर यदि ऐसा होना संभव न हो तो कम से कम रोगी को ठण्ड, नमी, कुहरे, और धूल व गुबार से तो अपनी रक्षा करनी ही चाहिए। रोगी गृह भली प्रकार गरम होना चाहिए। उस में ऐसी खिड़कियां नहीं होनी चाहिएँ कि जिनसे आई हुई हवा सीधी रोगी को लगे। रोगी को गर्म कपड़े पहिनने चाहिएँ पर वो बहुत भारी नहीं होने चाहिएँ।

रोगी का भोजन रोगी की अवस्थाओं के अनुसार होना चाहिए। यदि रोगी मुटापा लिए हो तो उसके भोजन में वसामय एवं कर्बोदितों की मात्रा कम कर दी जानी चाहिए। कमज़ोर और पतले रोगियों में वसामय (जैसे घी, मक्खन आदि) पदार्थों की मात्रा कुछ बढ़ा दी जानी चाहिए। अगर अफ़ारा तंग करता हो तो भोजन जहाँ तक हो सके शुष्क सा होना चाहिए और हरी भाजियाँ (बिना पकाई हुई) और कच्चे फलों को भोजन के साथ नहीं खाना चाहिए। न तो रोगी को धूम्रपान करना चाहिए और न मद्यपान। दोनों को जहाँ तक हो सके छोड़ देवे।

औषधियाँ—चिरकालीन श्वासप्रणाली-शोथ में उत्तेजक निःश्लेष्मकों का प्रयोग किया जाता है।

प्र अमोनिया कार्ब ग्रेन ४

टिंचर सिल्ला
टिंचर नक्सवोमिका प्रत्येक बूंदें १०
स्पिरिट क्लोरोफ़ार्म बूंदें २०
सेनेगा का क्वाथ मिलाओ १ औंस तक।
ऐसी तीन खुराकें।

हिदायतें—एक खुराक दिन में तीन वार। खुराकें भोजनों के बाद दी जावें।

इस नुस्खे में अमोनिया कार्ब आधार है। टिंचर सिल्ला और टिंचर नक्सवोमिका संयोजक हैं। अमोनिया कार्ब उत्तेजक निःश्लेष्मक है। टिंचर सिल्ला हृद्य को ताकत देता है और निःश्लेष्मक भी है। टिंचर नक्सवोमिका मस्तिष्कस्थ श्वास-केन्द्र की उत्तेजन-शीलता को बढ़ाता है। स्पिरिट क्लोरोफ़ार्म संशोधक है। योग के स्वाद को रुचिकर बनाती है और आध्मान-हर है। सेनेगा का क्वाथ निःश्लेष्मक संवाही है।

यदि श्लेष्मा का बहिःस्राव (Expectoration) बहुत हो तो टर्पेन्टाइन (निःश्लेष्मक का) का प्रयोग करना चाहिए।

प्र शुद्ध टेरिबीन बूंदें १०
साधारण पानक ड्राम १
बादाम मिश्रण मिलाओ १ औंस तक।
ऐसी तीन खुराकें।

हिदायतें—भोजन के बाद दिन में तीनों खुराकों को चार चार घण्टे के अन्तर से पीयो।

इस नुस्खे में टेरिवीन आधार है। संयोजक कोई पदार्थ नहीं है। साधारण पानक रुचिकर बनाने के लिए प्रयुक्त किया गया है। और बादाम मिश्रण टेरिबीन को घोले रखने के लिए संवाही के तौर पर मिलाया गया है।

चिरकालीन श्वास-प्रणाली-शोथ में प्रत्युत्तेजनाजनक प्रयोगों को भी इस्तेमाल किया जाता है। इसके लिए टर्पेन्टाइन का लेप (Linimentum terebinth Acet.) सवेरे और शाम छाती के आगे और पीछे मलना चाहिए।

इपिकैकुहाना (Ipecacuanha), एण्टिमनि (Antimony), पोटाशियम आयोडाइड् (Potassium iodide), स्क्विल (Squill) या सिल्ला (Scilla), टोलू (Tolu), एनिसाई (Anisi या सौंफ), वर्जिनियन प्रून (Virginian prune), डोवर का चूर्ण (Dover's-powder), सर्पेन्टरा (Serpentary), बैलाडोना (Belladonna), स्ट्रैमोनियम (Stramonium), लोबीलिया (Lobelia), नाइट्राइट् (Nitrite), एफेड्रीन (Ephedrine), नक्सवोमिका (Nuxvomica).

सातवाँ उद्बोध

आमाशय तथा पक्वाशय रोग

(आमाशय शोथ, अग्नियाँ, आमाशय व्रण और पक्वाशय व्रण)

आमाशय शोथ



क्ष्य—आमाशय के क्षोभ को दूर करना, और प्रशामक अम्लहर तथा ग्राही द्रव्यों द्वारा अन्तःकला के पुनर्प्ररोहण में सहायता देना।

साधारण परिचर्या—रोग की तीव्र दशा में रोगी को शय्यारूढ़ रहना चाहिए। चिरकालीन रोग हो तो रोगी को चलने फिरने और रोज़मर्रह के मामूली काम करने में कोई नुकसान नहीं है। उसे सर्दी से अपने आपको बचाना चाहिए। उदर के चारों ओर गरम कपड़े का परिवेष्टन बाँधना चाहिए। पर ये परिवेष्टन कस कर न बाँधा हुआ होवे। चिरकालीन आमाशय शोथ का रोगी यदि शुष्क और अनुष्णशीत प्रदेश की वायु का सेवन करे तो बहुत लाभकर होता है। सो रोगी को चाहिए कि वह वायु-परिवर्तन करे अर्थात् ऐसे प्रदेश में जाकर रहे।

पथ्य—भोजन का लक्ष्य यह होता है कि मैकेनिकल, रासायनिक और Thermal उत्तेजन को दूर किया जाय। तीव्र रोगियों में यह लक्ष्य पूर्ण उपवास से पूरा हो जाता है! वस्तुतः लगातार होने वाला वमन, कुछ भी खाना सर्वथा असम्भव बना देता है। जो, कुछ कम तीव्र रोगी हों उनमें खूब हलका किया हुआ दूध और अन्य Bland द्रव संतोषपूर्वक दिए जा सकते हैं। चिरकालीन रोगियों में मैकेनिकल उत्तेजन को दूर करने के लिए भोजन का निरीक्षण करना आवश्यक होता है कि कहीं उसमें कोई कोर्स Particle न हो। इसके अतिरिक्त Thermal उत्तेजन को दूर करने के लिए यह जरूरी है कि भोजन न गर्म और न बहुत ठण्डा ही होना चाहिए। रासायनिक उत्तेजन को दूर करने के लिए भोजन से मसालों, Fried-fats (Fatty acid वाले पदार्थों), और खाण्ड का सर्वथा बहिष्कार कर देना चाहिए। कई वार रोगी के आमाशय की श्लेष्मकला खास खास पदार्थों के लिए Sensitive होती है इसलिए रोगी को चाहिए कि वह सावधानी से इन पदार्थों को भोजन से पृथक् कर दे।

औषधियाँ—निम्न पाँच प्रकार की औषधियाँ इस रोग में प्रयुक्त होती हैं।—

१. मैकेनिकल प्रशामक—जो औषधियाँ आमाशय की श्लेष्मकला का उत्तेजक पदार्थों से मैकेनिकल तौर पर बचाव करती हैं। जैसे—बिस्मथ।

२. रासायनिक प्रशामक—ये औषधियाँ आमाशय की अन्तःकला में विद्यमान वातनाड़ियों के सिरों पर असर करके प्रशामक प्रभाव करती हैं जैसे हाइड्रोस्यानिक एसिड और क्लोरोफ़ार्म।

३. संग्राही—आमाशय की श्लेष्मकला से श्लेष्मस्राव को कम कर के यह आमाशय शोथ में लाभकर होती है। जैसे—रेवन्दचीनी।

४. आमाशय के रक्तापूर को दूर करके आमाशय शोथ में फ़ायदेमन्द होती हैं जैसे कि पारद।

५. आमाशय में विद्यमान होने वाले रस की कमी को पूरा करके आमाशय के कार्य को फिर से ठीक बनाने में सहायक होती हैं जैसे—उद्र हरिकाम्ल और पैप्सन।

इन उपरोक्त औषधियों के बहुत से भिन्न २ योग प्रयुक्त किए जाते हैं।

(१)-प्र बिस्मथ कार्ब—
सोड़ा बाइकार्ब—प्रत्येक ग्रेन १५
हलका हाइड्रोस्यानिकाम्ल बूंदें ३
एक्वा क्लोरोफ़ार्म—मिलाओ १ औंस तक।
ऐसी एक खुराक लाओ।

हिदाएतें—ऐसी एक खुराक प्रति दिन हिलाकर भोजन से पूर्व पियो।

इस नुस्खे में बिस्मथ आधार है। ये मैकेनिकल प्रशामक है। सोड़ा बाईकार्ब संयोजक है। क्योंकि आमाशय में

विद्यमान अम्ल की अधिक मात्रा को उदासीन करके ये प्रशामक प्रभाव दिखाता है। हाइड्रोस्यानिक अम्ल भी संयोजक है। क्योंकि ये (रासायनिक) प्रशामक प्रभाव को बढ़ाता है। क्लोरोफ़ार्म जल प्रशामक संवाही है। ये मिश्रण को सुगन्धित और सुस्वादु भी बनाता है। इस योग को भोजन से पूर्व इसलिए पिया जाता है ताकि इसमें उपस्थित पदार्थ आमाशय की श्लेष्म कला के सीधे सम्पर्क में आसकें।

यदि रोगी की भूख बढ़ानी भी अभीष्ट हो तो हाइड्रोस्यानिक अम्ल की जगह टिंचर नक्सवोमिका की कुछ बूंदें मिलाई जा सकती हैं। और क्लोरोफार्म जल की जगह जैन्शियन, नारंगी, कैलम्बा वगैरह के क्वाथ डाले जा सकते हैं। यदि संग्राही प्रभाव भी अभीष्ट हो तो टिंचर रिहाई को मिलाया जा सकता है।

२–प्र	पल्व रिहाई	ग्रेन १
	पल्व सोडा बाईकार्ब	ग्रेन ४
	पल्व जिंजिबर	ग्रेन १
	ओलियम मैन्थेपिप	बूंद $\frac{1}{2}$

ऐसा चूर्ण बनाओ। कैशेटों में ६ चूर्ण लाओ।

हिदायतें—१ कैशट दिन में तीन वार भोजनान्तरों में। इस नुस्खे में, संग्राही, अम्लविरोधी और आध्मान हर चीजों का मेल किया गया है।

३–प्र	हलका नाइट्रोहाइड्रोक्लोर अम्ल	बूंदें १०
	टिंचर नक्स वोमिका	बूंदें ५

टिंचर आरैन्शियाई
स्पिरिट क्लोरोफ़ार्म प्रत्येक बूंदें १५
जल मिलाओ १ औंस तक—
ऐसी तीन खुराकें लाओ।

हिदायतें—एक औंस दो छटांक पानी में मिलाकर भोजनोपरान्त दिन में तीन वार पियो।

इस नुस्खे में नाइट्रोहाइड्रोक्लोर अम्ल, आमाशय रस में होने वाली उद्रहरिकाम्ल की कमी को पूरा करने के लिए है और नुस्खे का आधार है। नक्स-वोमिका और नारंगी का टिंचर संयोजक हैं। स्पिरिट क्लोरोफार्म आध्मानहर प्रशामक है। इसको सब अम्लीय मिश्रणों की तरह भोजनोपरान्त देना चाहिए।

अग्नियाँ

(Functional dyspepsias)

मैंने अपनी आयुर्वेदोन्नति सम्बन्धी तथा एक्सरे दोनों पुस्तकों में इन अग्नियों के विषय में उल्लेख किया है।

अग्नियों के दो मुख्य प्रकार हैं। एक Hypersthenic और दूसरा Asthenic। Hypersthenic को तीव्राग्नि और Asthenic को मन्दाग्नि कहना चाहिए।

तीव्राग्नि में तीन बातें पाई जाती हैं—

(क) आमाशय रस में उद्रहरिकाम्ल की अधिकता होती है।

(ख) आमाशय की संतानिता (Tone) अधिक होती है।

(ग) आमाशय की विसर्पिता (Peristalsis) अधिक होती है।

Asthenia या मन्दाग्नि में उपरोक्त तीन बातें विरुद्ध दिशा में पाई जाती हैं।

दोनों अग्नियाँ वातिक दोष से उद्भूत होती हैं (पाश्चात्य-मत है आयुर्वेद मत भिन्न है।) तीव्राग्नि वातिक उत्तेजना के आधिक्य का फलरूप होती है। मन्दाग्नि वातिक शैथिल्य (Exhaustion) का परिणामरूप होती है। इन रोगों की परिचर्या में इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। चूंकि तीव्राग्नि में हमारा उद्देश्य वातिक उत्तेजना को दूर करना होगा तो मन्दाग्नि में वातिक शैथिल्य (Exhaustion) को दूर करना होगा।

परिचर्या—दोनों शिकायतों की बहुत कुछ एक सी ही है।

(क) रोगी को स्थान परिवर्तन कर लेना चाहिए। मन्दाग्नि वाले रोगी को Bracing place वाले जलवायु का सेवन करना लाभकर होता है। तीव्राग्नि वाले को Relaxing place आवश्यक होता है।

(ख) काम से छुट्टी, और अगर अग्नियों की विकृति बहुत अधिक हो तो शय्यारोहण करना आवश्यक होता है।

(ग) मानसिक तथा शारीरिक विश्राम दोनों अग्नियों में लाभकर होते हैं।

(घ) वैचारिक चिकित्सा भी अपनी उपयोगिता रखती है।

(ङ) रोगी को समय बाँधकर भोजन करना चाहिए और सब धन्धों से फ़ारग हो एकान्तचित्त होकर भोजन खाना चाहिए।

अब दोनों अग्नियों का पथ्य और औषध चिकित्सा पृथक् पृथक् लिखी जायेंगी।

तीव्राग्नि

पथ्य—इसमें ऐसा भोजन होना चाहिए जो आमाशय रस के अम्लाधिक्य को दूर करनेवाला हो। इसके लिए दो उपाय प्रस्तुत किए जाते हैं। एक तो यह कि ऐसे भोजन दिए जाते चाहिएँ कि जो स्वतन्त्र अम्ल के साथ मिल जाएँ और इस प्रकार स्वतन्त्र अम्ल की मात्रा को दूर कर दें। दूसरा उपाय यह है कि जो भोजन आमाशय रस की उत्पत्ति को बढ़ाते हैं वे न दिए जाँय।

पहिले उपाय के अनुसार कई लोग प्रोटीनों को भोजन में देना अधिक अच्छा समझते हैं। क्योंकि ये स्वतन्त्र अम्ल के साथ मिल जाती हैं अतः अम्ल की अनावश्यक अधिकता को रोक देती हैं। कई विचारक ये कहते हैं कि प्रोटीनें आमाशयरस की उत्पत्ति को बढ़ाती हैं अतः न दी जानी चाहिएँ। डाक्टर हुचिसन प्रथम मत के अवलम्बी हैं कि प्रोटीनें दी जानी चाहिएँ। दूसरे मत वाले प्रोटीनें कम देकर कार्बोहाइड्रेट् अधिक देते हैं। प्रथम मत वाले प्रोटीनें अधिक देते हैं और कार्बोहाइड्रेट् तथा खाण्डों

की मात्रा को कम कर देते हैं। वसामय पदार्थ खूब मात्रा में दिए जाते हैं क्योंकि ये आमाशय रस के स्राव को कम करते हैं। वे सब पदार्थ जो आमाशय रस के स्राव को बढ़ाते हैं रोक दिए जाने चाहिएँ। इनमें नमक, मसालों, मुरब्बों, आचारों, शोरबों वगैरह की गिनती होती है। मद्य भी रस के स्राव को बढ़ाती है। खट्टी चीजें खुद अम्ल वाली होती हैं अतः नहीं दी जानी चाहिएँ। चाय में चूंकि टैनिक अम्ल होता है अतः यह भी अधिक मात्रा में नहीं दी जानी चाहिए।

औषधें—ऐसी औषधियाँ प्रयुक्त करनी चाहिएँ जो कि या तो स्राव को रोकें या उसे उदासीन कर दें। वैलाडोना रोकने के उद्देश्य से वर्ता जाता है। पर अगर बड़ी मात्राओं में दिया जाय तो मुख को शुष्क (लालास्राव को कम करके) कर देता है और दृष्टि को (कनीनिकाएँ विस्तृत करके) खराब कर देता है। इसलिए सब से अच्छा उपाय यह है कि अम्ल को उदासीन करने वाले पदार्थ दिए जाएँ। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैग्नेशियम् कार्बोनेट्, मैग्नेशियम आक्साइड् और बिस्मथ कार्बोनेट् दिए जाने चाहिएँ। घुलनशील क्षार इस कार्य के लिए अच्छे नहीं होते और इसलिए एक मात्र उनका प्रयोग कार्य की सिद्धि नहीं करता है। वो झट पट उदासीन हो जाते हैं और इस के बाद नतीजा यह होता है कि आमाशय रस का स्राव और हो जाता है।

सबसे उत्तम प्रयोग विधि यह है कि अम्ल के उदासीन करने वाले द्रव्य को भोजन के दो घन्टे बाद दिया जावे क्योंकि

तब ही अम्ल की उपस्थिति आमाशय रस में अधिक से अधिक मात्रा में होती है।

प्र मैग्नीशियम कार्ब
बिस्मथ कार्ब बराबर भाग
एक चौड़े मुंह की बोतल में चार औंस ले आओ।

हिदायतें—एक चाय का चमचा भर। चमचा किनारों की समता तक ही भरा हुआ हो। भोजन के दो घन्टे बाद थोड़े पानी में मिलाकर पिएँ।

मैग्नेशियम कार्बोनेट् अगर विरेचन करे तो इसकी जगह कैल्सियम कार्बोनेट डाल लेना चाहिए। एलूमीनियम का हाइड्रोक्साइड् (एल्कौल) बहुत अच्छा अम्ल का उदासीन करने वाला है। इसे बिस्मथ की जगह प्रयुक्त किया जा सकता है। इस से मलबन्ध की शिकायत भी नहीं होती है। अकसर रोगी के लिए अम्लहर (अम्ल का उदासीन करने वाला) पदार्थ चक्रिकाओं में लेना अधिक सुभीते वाला होता है। रोगी को इसलिए 'ट्रोकिस्कस् बिस्मथ को' की चक्रिकाएँ जेब में डालकर रखनी चाहिएँ।

मन्दाग्नि

पथ्य—इसमें भोजन आमाशय रस के अनुसार नहीं रक्खा जाता बल्कि रोगी की (Motor power) के अनुसार रक्खा जाता है। इसलिए भोजन थोड़ी २ मात्राओं में होने चाहिएँ। और ऐसे थोड़ी मात्राओं वाले भोजन कई वार किए जाने चाहिएँ। इसके अतिरिक्त रोग के भोजन शुष्क (अर्थात्

कम द्रवों वाले) होने चाहिएँ । बड़ी मात्राओं में किए गए भोजन और अधिक द्रवों वाले भोजन नितानित आमाशय को बहुत अधिक फुला देते हैं। कच्चे फलों और शाक आदि भाजियों को, जो भोजन की मात्रा को बहुत वढ़ा देती हैं, नहीं खाना चाहिए। ऐसी भाजियां जो भोजन की मात्रा को अनावश्यक तौर पर नहीं बढ़ातीं खाया जा सकता है। आलुओं को थोड़ा खाना चाहिए। रोटी की जगह रस्क और भुर्भुरा टोस्ट खाने चाहिएँ। ऐसी चीजें जो आमाशय रस को बढ़ाती हों खाई जा सकती हैं उदाहरणार्थ, मसाले आदि। मद्य भी आमाशय रस को वढ़ाता है इसलिए थोड़ी मात्रा में बग़ैर बहुत हल्का किए पिया जा सकता है।

औषधियां—आमाशय रस को बढ़ाने के लिए इन्हें प्रयुक्त किया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए घुलन शील क्षार, तिक्त (Bitter) पदार्थों के साथ दिए जाते हैं। स्ट्रिक्नीन को तिक्त पदार्थ रूप में देना ठीक होता है। इसलिए नुस्खे जिनमें सोड़ा, नक्स-वोमिका और जैन्शियन हों, अकसर मन्दाग्नि के लिए दिए जाते हैं। इस प्रकार का एक नुस्खा पहिले दिया जा चुका है।

भोजनोपरान्त, एसिड् और फर्मेन्ट देने कोई विशेष लाभकर नहीं होते हैं।

अध्मान को दूर करने के लिए आध्मानहर योग देना चाहिए।

प्र सोड़ा बाइकार्ब ग्रेन १०
टिंचर कार्डेमम् को बूंदें १५
स्पिरिट क्लोरोफ़ार्म बूंदें १०
एक्वा मैन्थे पिप मिलाओ १ औंस तक।

हिदायतें—ये १ औन्स थोड़े पानी में मिलाकर पीना चाहिए।

इस नुस्खे में सोडियम बाइकार्बोनेट् आमाशय रस में वर्तमान उद्रहरिकाम्ल को उदासीन करता है। जिससे निकली गैस डकार लाती है। कार्डेमम् और क्लोरोफ़ार्म आध्मानहर संयोजक हैं। पैप्परमिन्ट का जल आध्मानहर संवाहक है।

आमाशय व्रण तथा पक्वाशय व्रण

चिकित्सा के लक्ष्य निम्न होते हैं—

(१) विश्राम।
(२) उपयुक्त भोजन।
(३) आमशय रस को उदासीन करना।

परिचर्या—कम से कम चार हफ़्ते तक शय्या पर पूर्ण विश्राम रोगी के लिए आवश्यक है। Epigastrium पर सेक होने चाहिएँ। परिचर्या बड़ी उत्तम परिचारिका द्वारा होनी चाहिए। शरीर में वर्तमान संक्रमण के केन्द्र (Septic foci) समूलोद्धृत होने चाहिएँ।

पथ्य—भोजन निम्न उद्देश्यों को पूर्ण करने वाला होना चाहिए।

(१) उत्तेजक न होवे जिस से कि और आमाशय रस को बनावे ।

(२) कम प्रोटीनों पर अधिक कर्बोहाइड्रेट तथा वसामय पदार्थों वाला होवे ।

(३) पर्याप्त कलोरियों वाला होवे ।

(४) छोटी छोटी मात्राओं में दिया जाना चाहिए ताकि आमाशय को फ़िज़ूल तौर पर न तना देवे (फुला देवे) ।

दो भोजन मुख्यतः प्रयुक्त किए जाते हैं। पहिले का नाम है लैनहार्ड्ज़ भोजन और दूसरे का नाम है सिपी का भोजन।

लैनहार्ड्ज़ का भोजन—इस में दो चीज़ें होती हैं। अण्डे और खाण्ड मिला दूध । इन दोनों भोजनों को छोटी छोटी मात्राओं में दिन में कई वार चाय के चमचे से खाया या पिया जाता है। दिन की कुल मात्रा निश्चित होती है। उसे ही दिन में कई वार विभक्त करके लिया जाता है। पहिले दिन दूध के ७ से १० औंस तक और एक अण्डा लिया जाता है। ये मात्रा प्रति दिन ३ $\frac{१}{२}$ औंस दूध और एक अण्डा अधिक दे कर बढ़ाई जाती है। इस प्रकार तब तक बढ़ाते जाते हैं जब तक कि रोगी १ $\frac{३}{४}$ पाइन्ट दूध के और ६ से ८ तक अण्डों के न खाने लगे। तीसरे दिन से कच्चा या कच्चा सा कीमा (Minced meat) १ औंस की मात्रा में रोगी को थोड़ा थोड़ा कर के दिन में कई वार अकेले या अण्डे के साथ मिला कर दिया जाता है। अगर यह रोगी को मुआफ़िक आजाय तो अगले दिन से २ औंस प्रति दिन, ८ दिन तक

दिया जाता है। भोजन प्रति घण्टे, सवेरे ७ बजे से लेकर शामके ६ बजे तक देते रहना चाहिए। रात को रोगी को पूर्ण विश्राम लेना चाहिए इस लिए कुछ खाने को मत दें। जो कुछ देना हो दिन में सवेरे ७ से लेकर ६ बजे शाम तक, दे देना चाहिए और वह भी बांट कर प्रति घण्टे २ के बाद छोटी २ मात्राओं में देना चाहिए। अण्डों और दूध दोनों को बरफ़से ठण्डा करके दिया जाता है और अण्डों को फेंट कर देते हैं। अण्डों में दानेदार खाण्ड तीसरे दिन से मिलाई जाती है। जिन रोगियों को मांस न मुआफ़िक़ आए उन्हें घुलन शील केसिन का कोई प्रयोग देना चाहिए जैसे कि प्लाज्मौन, कैसुमेन (Casumen), सैनेटोजन आदि बाज़ार में मिलते हैं।

आठवें दिन तक की ख़ुराक ऊपर बता दी गई है। इसके बाद थोड़े से उबले हुए चावल भी भोजन के साथ मिला देने चाहिएँ। इस के बाद फिर नरम रोटी (डबल रोटी से मतलब है) भी भोजन में सम्मिलित कर लेनी चाहिए। तत्पश्चात् रोटी और थोड़ा सा मक्खन भी होना चाहिए। अण्डोंको अब थोड़ा थोड़ा उबालना भी शुरू कर देना चाहिए। इस के बाद अण्डों को घटाना और कीमा या कुटी हुई मच्छी को बढ़ाना शुरु करना चाहिए। इस तरह करते हुए रोगी को अपनी रोज़मर्रह की ख़ुराक पर ले आना चाहिए। इस तरह २८ वें दिन की ख़ुराक और स्वस्थ पुरुषों की ख़ुराक में अब इतना फ़र्क रह जाता है कि रोगी की ख़ुराक में मटर वग़ैरह (बीजों वाले) जल्दी से न हज़म हो सकने वाले पदार्थ अभी सम्मिलित नहीं

हुए होते हैं। अब २८ वें दिन रोगी को शय्या से उठने और थोड़ा बहुत चलने फिरने की अनुमति दे देनी चाहिए। यहाँ पर यह स्मरण रहे कि रोगी भोजनों को हमेशा खूब चबा २ कर और धीरे २ खाता रहा हो। इसके बाद छठे से दसवें हफ्ते के बीच रोगी अपना रोज़मर्रा का हलका काम करने और अपनी बे-मुशक्कत से पैदा होने वाली आजीवका कमाने लायक हो जाता है। मैंने ये भोजन लिख दिया है। विदेशों में इसे इस तरह प्रयुक्त करते हैं। भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल और शाकाहारियों की आवश्यकताओं के अनुसार भारतीयों को अपने भोजन जो इन रोगों में दिए जा सके पता लगाने चाहिएँ।

मैं स्वयं दुग्धशाकाहारी (Lacto-vegetarian) हूं। और चाहता हूं कि अण्डे और मांसादि वाले भोजनों की जगह ऐसे शाक दुग्ध वाले भोजन पता लगाए जांय जो कि इन भोजनों की जगह इस रोग के रोगियों को दिए जा सकें। ये अण्डे और मांस वाले भोजन सिर्फ इसलिए लिखे हैं कि पाठकों को भली प्रकार ज्ञात हो कि पाश्चात्य-चिकित्सा में किन भोजनों द्वारा इलाज होता है। साथ ही दुग्ध-शाकाहारियों को, इनका लिखना, मानो आह्वान करना है कि वे इन रोगियों के लिए उपयुक्त भोजनों का कि जिनमें केवल मात्र दुग्ध एवं वनस्पति जन्य पदार्थ ही हों पता लगावें। लैनहार्ट्ज़ और सिपी दोनों भोजन इस रोग के दुग्धशाकाहारी रोगियों में प्रयुक्त नहीं हो सकते हैं।

दूसरा भोजन सिपी भोजन है। इस भोजन में मुख्यतः दूध और मलाई दी जाती हैं। ७ बजे सवेरे से ७ बजे शाम तक

प्रति घन्टे ३ औन्स बराबर २ मलाई और दूध के मिले हुए दिए जाते हैं। २ दिन के बाद १ अण्डा मिला दिया जाता है। फिर ३ औन्स उबले हुए चावल मिला देते हैं। एक एक अण्डा और ३ औन्स चावल धीरे २ मिलाते जाते हैं। इस तरह सातवें दिन रोगी की खुराक में ; ३ औन्स दूध और मलाई के बराबर मिले हुए प्रति घन्टा सवेरे ७ से लेकर शाम के सात तक, दो या तीन नरम अण्डे, और ६ से ९ औन्स उबले हुए चावलों के होते हैं। और रोगी अण्डे और चावलों को क्रमशः खाता है। जैसे, मानलो कि उसने सातवें दिन ३ अण्डे और ९ औंस चावल खाने हैं। तो पहिले वो सवेरे दो घन्टों में एक वार एक ३ औंस की दूध मलाई की खुराक के साथ एक अण्डा खालेगा। फिर इसके बाद अगले दो घन्टों में एक खुराक के साथ ३ औंस उबले चावलों के खालेगा। अर्थात् इस तरह बदल बदल के खाएगा और एक वक्त १ अण्डे या ३ औंस चावलों के ही लेगा इससे अधिक नहीं। दूध और मलाई की जगह, रोगी का जी न ऊब जाए इसलिए, भाजियों के रसे, कस्टार्ड, फिरनी आदि भी दिए जा सकते हैं, (Jelly) जेली भी खुराक के साथ मिलाई जा सकती है। और रोगी को तोल कर उसकी वृद्धि का अन्दाज़ा रखना चाहिए। रोगी इस इलाज में दो तीन पौण्ड बढ़ जाता है।

इन सात दिनों के बाद अगले १४ दिनों में उसके भोजन में आलू, भाजियों के रसे, मांस-रस आदि मिलाए जाते हैं। और दिन के तीन आहारों को बड़ा बनाते हैं। शेषों को छोटा रखते हैं और संख्या में भी कम कर देते हैं। इस तरह

उसके आहार का नियमन करते हैं। विस्तार से जानना हो तो कोई बड़ी पुस्तक पढ़नी चाहिए। इस छोटी सी पुस्तक में तो निर्देश ही किया जा सकता था।

औषधियां— वो औषधियाँ दी जाती हैं जो कि आमाशय रस को कम बनने दें या बने हुए को उदासीन करदें। टिंचर बेलाडोना पहिले प्रकार की औषध है। इसे १० से १५ बूंदों की मात्रा में एक गिलास भर पानी में डाल कर सवेरे ही रोगी को खाली पेट दिया जाता है। आमाशय रस की अम्लीयता को जो व्रण को नुकसान-दे होती है उदासीन करने के लिए ट्रिपल पाउडर बहुत अच्छा है इसका नुस्खा नीचे दिया जाता है।

मैग्नेशियम हाइड्रोक्साइड	तीनों समान भाग
क्रीटा प्रेपरेटा	
बिस्मथ ओक्सीकार्ब	

इस पाउडर के शुरु में ५ या ६ चाय के चमचे दिन में दिए जाते हैं। आधा चाय का चमचा प्रत्येक घंटे के भोजन के बाद देना चाहिए। २ हफ़्ते बाद इसकी मात्रा घटा देते हैं। चार चायके चमचे कर देते हैं फिर चार हफ्ते बाद और भी घटा देते हैं और उत्तरोत्तर घटाते जाते हैं। अगर इस चूर्ण से रोगी को दस्त आता हो तो क्रीटा प्रेपरेटा कुछ बढ़ा देते हैं, और मैग्नेशियम का लवण घटा देते हैं। अगर कब्ज़ होती हो तो क्रीटा प्रेपरेटा घटा देते हैं और मैग्नेशियम का लवण कुछ बढ़ा देते हैं। आमाशय व्रण की विस्तृत चिकित्सा बड़ी पुस्तकों में पढ़नी चाहिए। आमाशय व्रण में शल्य चिकित्सा कब आवश्यक होती है ? या रक्त वमन आदि उत्पातों की चिकित्सा क्या है ? इस जगह नहीं लिखा जा सकता है।

आठवाँ उद्बोध

आन्त्र कृमि-नाशक औषधियां

वर्द्ध्र कृमि



ते की तरह के कृमियों को वर्द्ध्र कृमि के नाम से पुकारा जाता है। इन्हें अंग्रेजी में Tape worm कहते हैं। इन कृमियों की चिकित्सा के लिए मेलफ़र्न को प्रयुक्त किया जाता है। कई चिकित्सक रोगियों को दो तीन दिन तक इतना थोड़ा खाने को देते हैं कि वह उपवास ही रखवाते हैं और तत्पश्चात् औषध सेवन कराते हैं। उद्देश्य यह होता है कि औषध कृमि के गाढ़ सम्पर्क में आजावे। परन्तु ऐसे उपवास निरर्थक हैं। हाँ, औषध को खाली पेट दिया जाना चाहिए। और रोगी को औषध लेने के बाद शय्यारूढ़ हो जाना चाहिए। औषध की द्रव रसक्रिया (Ext. filicis Liq.) दी जाती है। पर यह क्योंकि पूतिगन्धि होती है इसलिए कैप्स्यूल में देना अच्छा है। इसकी १५ बूंदें कैप्स्यूल में बंद करके प्रति १५ मिनटों बाद चार बार दी जानी चाहिएँ अर्थात् कुल ६० बूंदें। यदि रोगी कैप्स्यूलों के निगलने में असमर्थ हो तो निम्न मिश्रण दिया जाता है।—

प्र मेलफर्न को द्रव रसक्रिया
ट्रेगाकैन्थ का म्यूसिलेज्
आर्द्रक पानक प्रत्येक १ ड्राम
दालचीनी का अर्क मिलाओ १ औंस तक।
एक घूंट बनाओ

हिदायतें—निर्दिष्ट प्रकार से पियो।

(निर्दिष्ट प्रकार से मतलब यह है कि चिकित्सक ने जिस तरह पीने को कहा हो। खाली पेट आदि)

इस नुस्खे में मेल-फर्न आधार है। म्यूसिलेज् को आधार का घोल बनाए रखने के लिए मिलाया गया है। आर्द्रक पानक आध्मान-हर है और स्वाद को रुचिकर बनाने वाला है। दालचीनी का अर्क भी स्वादु संवाही है। क्योंकि मेल फर्न की रसक्रिया पूतिगन्धि है अतः सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग इसकी दुर्गन्ध को छिपाने के लिए प्रयुक्त करना युक्तियुक्त है।

घूंट को एकदम पीलेना चाहिए। दो घण्टे के बाद एक विरेचन दिया जाता है। विरेचन के लिए सिडलिट्ज़ का चूर्ण या 'मिस्ट सेना कां' का १ औंस दे सकते हैं। यह बात स्मरणीय है कि केस्टर ऑयल (एरण्ड तेल) का विरेचन नहीं देना चाहिए। एरण्डतेल की उपस्थिति में मेल फर्न का एक विषमय भाग जज्ब हो जाता है जो कि नुकसान-दे होता है। यदि विरेचन १ घण्टे तक अपना काय न करे तो साबुन और पानी की एक वस्ति देनी चाहिए। मल त्याग गर्म पानी के बर्तन में कराना चाहिए। फिर इसे छानकर, छान में कृमि के सिर को ढूंढना चाहिए। जब

तक कृमि का सिर न निकल जाय तब तक इलाज अधूरा रहता है क्योंकि कृमि का सिर पुनः बढ़ने लगता है।

गण्डूपद कृमि

इसके लिए सबसे उत्तम औषधि सैन्टोनीन है। यद्यपि यह औषध भारत में बहुत पाई जाती है पर आश्चर्य का विषय है कि इसे आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अन्य औषधियों के साथ सम्मिलित नहीं किया गया है। यूनानी में इसे अफसन्तीन कहते हैं। यह औषध Artemisia maritima नामक क्षुप से जो कि Compositae परिवार का है पैदा होती है। काश्मीर और अफ़गानिस्तान में Artemisia का पौदा बहुत मिलता है।

इस औषध को कैलोमल, स्कैमोनी या एरण्डतेल जैसे विरेचकों के साथ मिलाकर दिया जाता है। इसकी मात्रा जवान आदमी के लिए और १२ साल से बड़े लड़के के लिए ब्रिटिश फार्मेकोपिया के अनुसार १-३ ग्रेन की है।

प्र सैन्टोनिन ग्रेन ३
एरण्ड तैल आधा औंस
म्यूसिलेज् एकेशिया यथाभीष्ट
साधारण पानक ड्राम १
एक्वा मेन्थेपिप—मिलाओ दो औंस तक
एक घूंट बनाओ।

हिदायतें—निर्दिष्ट प्रकार पियो।

इस नुस्खे का सैन्टोनिन आधार है। एरण्ड तेल संयोजक है। म्यूसिलेज् तेल का घोल बनाने के लिए प्रयुक्त किया गया है।

पानक योग को स्वादु बनाने के लिए और पुदीने के (सत) का अर्क आध्मान हर संवाही के रूप में।

चुरुए या तन्तु-कृमि

इन्हें चमुने भी कहते हैं। लेटिन में इन्हें Enterobius vermicularis कहते हैं। ये अकसर बच्चों में मिलते हैं। और बदहज़मी के कारण होते हैं।

परिचर्या—रोगी की सेहत को परिपुष्ट करना चाहिए। वायु परिवर्तन करा देना चाहिए।

भोजन—भोजन में निशास्ते और मीठे वाली चीज़ों को कम कर दें या हटादें।

औषध—सैन्टोनिन बड़ी लाभप्रद है। सैन्टोनिन् गण्डूपद कृमियों में और इनमें अर्थात् दोनों में फ़ायदेमन्द है। दो साल के बच्चे को सैन्टोनिन के १से २ ग्रेन, आधे ग्रेन कैलोमल के साथ दे सकते हैं।

गन्धक का भी प्रयोग कर सकते हैं। कुछ हफ़्तों तक गन्धक की टिकियाँ (B.P.) बर्तनी चाहिएँ। इनकी मात्रा आधी टिकी दिन में तीन वार है।

क्वाशिये के क्वाथ और सादे नमक के पानी में बनाए हुए घोल की वस्तियाँ भी दी जाती हैं। इन्हें प्रति दूसरे दिन मलत्याग के बाद देना चाहिए।

(नमक १ और २० के अनुपात में और क्वाशिया १ और ४० के अनुपात में)

नौवाँ उद्बोध

मल-बन्ध

(विरेचक, सुख-विरेचक तथा वस्ति)



ल बन्ध की चिकित्सा के प्रति हमारा लक्ष्य मल-बन्ध के कारण की निवृत्ति है। यद्यपि मलबन्ध के अनेकों कारण हैं और सब का ठीक ठीक परिगणन मुश्किल है। पर तो भी निम्न सूची उपस्थित की जाती है।

(१) मकैनिलक—जैसे दृढ़ीभूत हुए २ मल का फंस जाना, बृहदान्त्र का अर्बुद इत्यादि।

(२) उदर-पेशियों की कमजोरी।

(३) उद्वेगक प्रक्रिया की अपूर्णोपस्थिति। जब हम कुछ खाते हैं तो उसके बाद एक उद्वेग उठता है जो मल को परित्यक्त करने में सहायक होता है। इस उद्वेग की प्रक्रिया को अंग्रेजी में Gastro-colic reflex कहते हैं। भुक्त भोजन का अवशिष्ट भाग पर्याप्त मात्रा में हो तो उद्वेग जनक होता है अन्यथा नहीं। इस लिए थोड़े भोजन का खाना

और ऐसे भोजन का खाना जिसका अवशिष्ट पर्याप्त मात्रा में न हो मलबन्ध की शिकायतें पैदा कर सकते हैं।

(४) यदि बृहदान्त्र अत्यधिक पिपासु होवें और मल में बचे खुचे द्रव को भी चूस लें (जज़्ब करलें) तो मल दृढ़ हो जाता है और इस प्रकार मलबन्ध हो जाता है। इसी श्रेणी में द्रवों का पर्याप्त मात्रा में न पीना भी सम्मिलित है। द्रवों की पर्याप्त मात्रा न पीने से भी मल उतना नरम न होगा जितना कि स्वस्थ अवस्था में होना चाहिए।

(५) वातसंस्थान के शैथिल्य में (Nervous Depression) में भी आन्त्रोंका परिसर्पण (Peristalsis) शिथिल होता है अतः मलबन्ध हो जाता है।

(६) यदि बृहदान्त्रों की मांसपेशियों में उपयुक्त तनाव (Tone) न होवे तो तब भी मलबन्ध हो जाता है।

(७) यदि डिम्बग्रन्थि-शोथ, आन्त्रपरिशिष्ट-शोथ या शोथ युक्त अर्शस् इत्यादि होवें तो वातनाड़ियों की प्रक्षेपी प्रक्रिया द्वारा (Reflexly) आन्त्रों का परिसर्पण रुक जाता है और इस का परिणाम रूप मलबन्ध हो जाता है।

(८) आन्त्र की दीवार का संकोच या अकड़ांद (Spasm)।

आन्त्र के कार्य पर मनुष्य के विचारों का भी बड़ा प्रभाव होता है। अतः चिन्तित अवस्थाओं में तथा मानसिक शान्ति की विघ्न रूप दशाओं में भी मलबन्ध हो जाता है। परीक्षा के दिनों में विद्यार्थियों को मलबन्ध कई वार इसी कारण होता है।

मलबन्ध की चिकित्सा से पूर्व यह निश्चय कर लेना चाहिए कि रोगी मलबन्ध से पीड़ित है या नहीं। बहुधा रोगी यह समझ लेते हैं कि उन्हें मलबन्ध ने सताया हुआ है और विरेचक लेते रहते हैं पर वस्तुतः उन्हें मलबन्ध की शिकायत नहीं होती। मलबन्ध का विषय बड़ा विस्तृत है। अतः यहाँ पर केवल मात्र इस बात का निर्देश ही कर दिया गया है।

दूसरी बात यह है कि जो रोगी मलबन्ध से पीड़ित हुए हुए देखने में आते हैं। उन में अकसर उपरोक्त कई कारण एक साथ उपस्थित होते हैं और किसी एक कारण को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है अतः निम्न प्रकार की चिकित्सा का आयोजन किया गया है।

साधारण आदेश या उपचार—रोगी को कहो कि प्रति दिन नियम पूर्वक शौच (मल-निवृत्यर्थ) जाया करे। और पुरीषोत्सर्ग के समय काफ़ी देर बैठा करे। यह भी ध्यान रक्खे कि टट्टी साफ़ हो (कई मनुष्य टट्टियों के दुर्गन्धित होने के कारण ही मलत्याग नहीं कर सकते हैं और मलबन्ध के शिकार हो जाते हैं।) और उसमें सर्दी भी न होवे। सर्दी के नितम्ब को लगने से भी अकसर टट्टी खुलकर नहीं आती है।

शारीरिक व्यायाम भी आन्त्रों के तनाव (Tone) को बनाए रखने में सहायक होती है और पर्याप्त मात्रा में की हुई मलबन्ध को दूर करने में मदद देती है पर अगर इससे कामयाबी हासल न होवे तो फिर ख़ामख़ा न बढ़ानी चाहिए और न इस पर

अधिक जोर ही देना चाहिए। हाँ उचित व्यायाम को करते जाना चाहिए।

उदर-पेशियों की व्यायामें उदर-पेशियों को अधिक सबल बनाती हैं अतः ऐसे आसन तथा कसरतें जो ख़ासकर उदर पेशियों को अधिक मजबूत बनाने के लिए हों की जानी चाहिएँ। आगे और पीछे को झुकना, कमर पर हाथ रख कर धड़ को चारों ओर घुमाना इत्यादि। इसके इलावा मर्दन बड़ा लाभप्रद है। सीधे लेटकर हाथ की मुट्ठी सी बनाकर या हाथ के पीछे के मोटे भाग से उदर की दीवार को मसलना चाहिए। दाईं ओर से बाईं ओर को हाथ बृहदान्त्र की दिशा को अनुसरण करता हुआ ले जाना चाहिए। इस मालिश को सवेरे शाम रोगी को ख़ुद ही करना चाहिए।

भोजन—यदि रोगी को मलबन्ध खाने पीने की गड़बड़ से हो तो भोजन पर जोर डालना चाहिए। अन्यथा भोजन की सूचियाँ मलबन्ध को दूर करने में निष्फल हो जाती हैं। उदाहरणार्थ यदि आन्त्र की मांसपेशियों के तनाव की कमजोरी होगी तो भला भोजन परिवर्तन क्या कर सकेंगे।

भोजनों के सम्बन्ध में तीन बातें याद रखनी चाहिएँ।

(१) भोजन ऐसा है कि इसका अवशिष्ट पर्याप्त मलराशी बनाने वाला होगा। क्योंकि यदि मलराशी पर्याप्त न बनेगी तो फिर मलत्याग भली प्रकार न होगा और रोगी को मलबन्ध की शिकायत बनी रहेगी।

(२) इसमें पेय या द्रव्य पदार्थों की मात्रा पर्याप्त है और वैसे भी रोगी दिन में पेय पदार्थों को पर्याप्त मात्रा में पीता है।

(३) कई भोज्य जिनमें कि सुख विरेचन का गुण होता है उन्हें उचित मात्रा में बाँटा हुआ होवे; और वे पदार्थ जो ग्राही या मलबन्धकारक हैं (जब तक कि रोगी की मलबन्ध की शिकायत नहीं जाती रहती) सावधानी से भोजन से पृथक् रक्खे गये हों। पर उपरोक्त दोनों सूरतों में Moderation वर्तना चाहिए। न बहुत अधिक सुखविरेचक ही भोजनों में घुसेड़े जावें न ग्राही पदार्थों का भोजन से बिल्कुल बायकाट ही कर दिया जाय।

पहिले उद्देश्य की पूर्ति के लिए आटे पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मशीनों का महीन पिसा हुआ आटा, मैदे की चीजें, शकरकन्दी का शाक इत्यादि यद्यपि मलराशी तो थोड़ी बहुत बढ़ा देते हैं पर पर्याप्त खुरदरे नहीं होते कि आन्त्रों में उद्वेगजनक होवें जिससे परिसर्पण प्रारम्भ हों और मलत्याग की ख्वाहिश होवे। कई चीजें ऐसी हैं जो कि सारी की सारी ही हज़म होजाती हैं जैसे चावल, डबल रोटी इत्यादि और मलराशी के बहुत कम अवशिष्ट रहने से मलबन्ध हो जाता है। इन बातों का पूरा २ ध्यान रखना चाहिए। इसलिए रोटी का आटा बहुत पतला न हो और न बहुत मोटा हो (बहुत मोटा होना भी हानिकर होता है)। अनुभव बताता है कि किस व्यक्ति को किस प्रकार का पिसा हुआ आटा मुआफ़िक आता है। इसके अतिरिक्त भाजियाँ जैसे

कि मूली, शल्जम, पालक आदि की हैं (जिनमें Cellulose की पर्याप्त मात्रा है; Cellulose के अपच होने के कारण) मल की राशी को पर्याप्त मात्रा में बनाने में सहायक होती हैं और मलबन्ध की शिकायत को दूर करती हैं। कई फल भी Cellulose (सेल्यूलोज़) की उनमें पर्याप्त राशी होने के कारण मलबन्ध को दूर करने में सहायक होते हैं।

दूसरी बात पेय या द्रव पदार्थों की मात्रा पर ध्यान केन्द्रित करने का है। सबसे उपयोगी पेय तो पानी ही है। फिर इसके बाद गन्ने की मौसम में गन्ने का रस, फलों की मौसम में फलों के रस, (नारंगी सन्तरे अंगूर वगैरह के रस तथा सेव, नाशपाती, तरबूजा, खरबूजा, वगैरह) उपयोगी होते हैं।

इसके बाद तीसरी याद रखने वाली बात यह है कि कुछ कुछ सुखविरेचक पदार्थों को भोज्य वस्तुओं में सम्मिलित करना और मलबन्धकारी वस्तुओं का यथोचित बहिष्कार। आम, अंजीर वगैरह फल सुखविरेचक हैं इन्हें भोजनों में सम्मिलित किया जा सकता है। घी, मक्खन, आदि चिकने वसाम पदार्थ भी यदि रोगी पचा सके तो सुखविरेचक होते हैं। पालक, सरसों काली तोरी वगैरह शाक भी सुख विरेचक होते हैं। इनमें पानी की मात्रा भी बहुत काफ़ी होती है और Cellulose की भी। केला, जामुन वगैरह फल मलबन्ध-कर होते हैं। केले, अरबी, कचालू (और कई मनुष्यों को आलू का शाक), वगैरह भाजियाँ मलबन्ध-जनक होती हैं। दूध, दहीं, चावल, वगैरह मलबन्ध-कारक होते हैं। सवेरे पी हुई दही की लस्सी

और रात को पिया हुआ गरम दूध जो मलबन्ध को दूर करने वाले गिने जाते हैं उनके कारण विशेष हैं। जब मैं यह कहता हूं कि दूध मलबन्ध-कर है तो मेरा मतलब एक General statement से है। विशेष अवस्थाओं में यही दूध मलबन्ध करने की जगह सुखविरेचक सिद्ध हो सकता है। इसी तरह दहीं की लस्सी और दहीं जो साधारण तौर पर मलबन्ध-कर हैं विशेष अवस्थाओं में सुख-विरेचन का कार्य कर सकते हैं। यहाँ पर इन विशेष अवस्थाओं पर विचार करना इस पुस्तक के क्षेत्र से बाहर है।

टैनीन वाले भोजन कब्ज़ करते हैं। गाढ़ी चाय जो काफ़ी देर तक उबाल कर तैयार की जाती है कब्ज़ करती है। चाय तैयार करने के दो तरीके हैं। एक तो चन्द सैकिण्डों तक उबलते पानी में चाय को डालकर छान लेने का दूसरा कुछ अरसे तक चाय को पानी में डालकर उबालने का। पहिले तरीके से बनाई हुई चाय मलबन्ध-कर नहीं होती है क्योंकि इसमें अभी टैनीन नहीं घुल सकी होती। और काफ़ी देर तक उबाली हुई चाय में टैनीन घुली हुई होती है अतः द्रव तथा पेय होते हुए भी यह मलबन्ध-कर होती है।

मांस खाने वालों को यह पता होना चाहिए कि पचने के बाद इसका अवशेष बहुत थोड़ा होता है। मद्यपायिओं को पता होना चाहिए कि बीयर (जौ की शराब) कब्ज़ खोलती है। पर इसकी आदत का पड़ना नुकसान-दे है। और शराब की अधिक पीने की आदत से अन्य रोग होते हैं। बुद्धि पर भी

असर पड़ता है इत्यादि। अतः एक फ़ायदे को लेते हुए दूसरे नुकसानों को भी तोल लेना चाहिए और जैसा उचित हो वैसा करना चाहिए। आसव अरिष्ट ख़ास तौर पर द्राक्षासव, पुनर्नवासव, अभयारिष्ट इत्यादि मलबन्ध के दूर करने वाले होते हैं। एक तो उन में कुछ दवाइयाँ ही ऐसी होती हैं जो विरेचक होती हैं। पर यदि ऐसी दवाइयाँ न भी हों तो तब भी आसवों व अरिष्टों में वर्तमान मद्य ही पर्याप्त सुखविरेचक होता है। प्रयोग के समय लाभ और हानि का पलड़ा तोल कर प्रतिदिन के औषध प्रयोग की सलाह देनी चाहिए। मैं द्राक्षासव के प्रतिदिन के अन्धाधुन्धी इस्तेमालके बखिलाफ़ हूँ। ये औषाध औषध रूप में ही प्रयुक्त होनी चाहिए, प्रतिदिन की भोज्य वस्तु नहीं बननी चाहिए।

औषधियाँ—कई चिकित्सक ये कहते हैं कि रोज़मर्रह कसरतें करना (और उन में नई नई तबदीलियां,) पेट की मालिशों और खुराकी नसीहतों से अच्छा तो यही है कि एक दवा पिलादी जिससे रोगी को खुल कर हाजत हो जावे। कई रोगी भी इसी में सुख मानते हैं। जो उन्हें दिनचर्य्या के लम्बे और दिमाग खपाने वाले हिदायतनामे बख़्शता है, उसे कोसते हैं। इसके बिलकुल विपरीत कई चिकित्सक प्रतिदिन के दवाइयों को पेट में ठूंसते चले जाने वाले तरीके को बड़ा हानिकर करार देते हैं और इसी तरह कई रोगी भी हर रोज की बोतलें चढ़ाने से बड़े घबड़ाए हुए होते हैं कि कभी इन बोतलों का ख़ातमा भी होगा या नहीं या कि उन्हें बोतलें पी पी कर ही ज़िन्दगी तबाह कर देनी पड़ेगी।

चिकित्सक को बहुत सतर्क होना चाहिए। रोगी की

पसन्द के अनुसार उसे नसीहतें कर कर के धीरे २ अपनी सम्मति का बनाना चाहिए। चिकित्सक के लिए आदर्श ये है कि न तो वो एक मत को (जिस में दवाइयों की प्रभुता है।) अधिक महत्व देवे और न दूसरे (दिनचर्या वाले) को अधिक। दोनों के बीचके मार्ग का अनुसरण करे। उसका लक्ष्य यह होना चाहिए कि रोगी अन्ततो गत्वा जहाँ दवाइयों से नजात पाए वहाँ विशिष्ट दिनचर्या से भी मुक्ति पाए। साधारण मनुष्य की तरह निश्चिन्त होकर दिनयापन करे।

आजकल हज़ारों विरेचक दवाइयाँ देखने को मिलती हैं और फिर उनके पेटेन्ट योगों ने तो कमाल ही कर दिया है। रोगी भी नाना प्रकार के विरेचकों को वर्तते हैं। किसी को कोई विरेचक सुखाता है किसी को कोई। कोई एरण्ड तैल गटागट पी जाता है तो दूसरा इसकी गन्ध से कोसों दूर भागता है। जिस तरह कपड़ों के फैशन होते हैं सो उसी तरह विरेचकों के भी फैशन हैं। कोई कैस्टोफ़ान लेता है, कोई फ्रूट साल्ट, कोई ब्लूपिल, कोई सिड्लिट्ज़ पाउडर इत्यदि। पर किस रोगी को कौनसा विरेचक लेना चाहिए इस बात को शुभ सम्मति एक विचारवान् चिकित्सक ही दे सकता है और उसे अपने निर्णय का आधार निम्न विरेचकों सम्बन्धी विचार को बनाना चाहिए।

विरेचकों का श्रेणी करण—

(१) सैलाइन (लवणीय) विरेचक—निम्न पदार्थ इस श्रेणी में परिगणित होते हैं। (i) सोडियम गंधित

(ii) मैग्नेशियम गन्धित (iii) पोटाशियम तातरित(Tartrate) (iv) मैग्नेशियम के सित्रित(Citrate) और (v) सोडियम के प्रस्फुरित। ये सब सीधा बृहदान्त्रों की अन्तःकला पर अपना असर करते हैं। शरीर में जज़्ब नहीं होते और आन्त्र की अन्तः कला से द्रव पदार्थ को खींचते हैं। ये द्रव पदार्थ आन्त्र के अन्दर के छिद्र में (Lumen) इकट्ठा होकर मल को पतला करता है।

(२) एन्थ्रसीन समूह—इस में कैस्करा, कुमारी(Aloes), सन्नाय (स्वर्णमुखी) और रेवन्द चीनी सम्मिलित होते हैं। इन में एक पदार्थ (क१४ उ१०) होता है; जो एन्थ्रसीन श्रेणी का है। इस पदार्थ की उपस्थिति इन को विरेचकों में परिगणित कराती है। फिनौलफ्थैलीन भी एन्थ्रसीन श्रेणी की ही है पर यह प्रकृति से प्राप्त नहीं होती बल्कि रसायनशाला में तैयार होती है।

(३) **तीव्र-विरेचक**—जैलप, जयपाल (तैल) और इन्द्रायन तीव्र विरेचक है। ये पदार्थ आन्त्र की अन्तःकला को क्षुब्ध(Irritate)करते हैं। इस क्षोभ से जो स्राव निकलता है उससे आन्त्रों के अन्दर वर्तमान मल पतला होजाता है। इस तरह ये पदार्थ तीव्र विरेचक होते हैं। यदि इन की मात्रा विरेचनोचित मात्रा से अधिक हो तो ये आन्त्र की अन्तःकला का इतना क्षोभ करते हैं कि उसे शोथयुक्त कर देते हैं।

(४) **पित्त-विरेचक**—इस समूह के विरेचक आन्त्र में गिरने वाले (मुख्य पित्त-वाहिनी द्वारा) पित्त के प्रवाह

को अधिक करते हैं और विरेचन भी करते हैं। सब पास्द के समास, यूओनिमिन, पोडोफिलिन और इरिडिन इसी समूह में अन्तर्गत होते हैं।

(५) मैकेनिकल भेदक—इन्हें इस लिए मैकेनिकल भेदक कहा जाता है क्योंकि इन का भेदन प्रभाव इनके मैकेनिकल कार्य पर निर्भर होता है। इन में कोई पदार्थ ऐसा नहीं होता जो भेदन करावे, पर इनका मैकेनिकल कार्य ही भेदन करता है। उदाहरणार्थ पिट्रोलियम स्नेहन (Lubricant) का कार्य करता है। अर्थात् आन्त्र की दीवार को चिकना करता है जिस से मल की गति आसान हो जाती है। एगर एगर मैकेनिकल तौर पर मल के परिमाण को बढ़ाता है जिस से मल का आन्त्रकी दीवार के साथ पैदा हुआ संघर्ष, परिसर्पण (Peristalsis) को उत्तेजित करता है।

पैराफीन द्रव भी आन्त्र की दीवार को चिकना करके अनुलोमन करवाता है।

अन्य अनुलोमक, विरेचक व भेदक जो उपरोक्त किन्हीं भी श्रेणियों के अन्तर्गत नहीं होते हैं निम्न हैं। (१) एरण्ड तैल—इसका भेदक गुण रिसिनोलिक अम्ल के कारण होता है। ये एक प्रकार का आन्त्रों की अन्तः कला का हलका हलका क्षोभ सा करता है, जिससे भेदन होता है।

(२) गन्धक—भी भेदक है। इसका कार्य संभवतः गन्धक द्विओषिद् गैस के बनने के कारण होता है। ये गैस आन्त्र को

फुलाती है और आन्त्र की दीवारके तनने से उसं में वर्तमान वात-नाड़ियों के छोर संभवतः क्षुब्ध (Stimulated) होते हैं और इस लिए परिसर्पण को उत्पन्न करते हैं जिससे भेदन आसानी से हो जाता है।

(३) **स्ट्रिक्नीन** इन विरेचकादि औषधियों की बहुत अच्छी सहयोगी औषध है। क्यों कि एक ओर तो ये आन्त्र की वातनाड़ियों की उत्तेजन-शीलता को बढ़ाती है, दूसरी ओर आन्त्रों में वर्तमान मांसपेशियों के तनाव (Tone) की भी वृद्धि करती है।

संशोधक के तौर पर आध्मानहर और उदावर्तहर औषधियों को इन विरेचकादि द्रव्यों के साथ योगों में प्रयुक्त करना लाभकर है। ये आध्मानहर तथा उदावर्तहर द्रव्य आर्द्रक, कृष्ण मरिच, हायोस्यामस्, बेलाडोना प्रभृति हैं।

अब इस बात पर विचार किया जायगा कि कब कब किस किस विरेचन द्रव्य को प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

(१) **सैलाइन**—इन्हें दो अभिप्रायों के लिए प्रयुक्त करते हैं। एक तब जब की बृहदान्त्र को शीघ्र ही खाली करना हो। दूसरे जब प्रतिदिन या अकसर विरेचक देना आवश्यक हो। पहिले अभिप्राय को पूर्ण करने के लिए सीडलिट्ज़ पाउडर दिया जाता है। इस चूर्ण में मुख्य विरेचक पोटाशियम के टार्टरेट और बाई-टार्टरेट् होते हैं। प्रतिदिन या अकसर के इस्तेमाल के लिए गन्धितों का प्रयोग किया जाता है। गन्धितों को तीन विधियों से

देते हैं। एक तो कई नैसर्गिक जल प्रकृति में प्राप्त होते हैं जिनमें गन्धितों (सोडियम और मैग्नीशियम गन्धितों) की पर्याप्त राशी होती है और इस लिए ये जल विरेचक गुण से युक्त होते हैं। हनयाड़ी, व रूबिनाट जल इसी प्रकार के उदाहरण हैं। देहरादून का नाला-पानी वाला जल भी कहते हैं कि थोड़ी न थोड़ी गन्धितों की मात्रा से युक्त है। दूसरी विधि सोडावाटर की तरह गन्धितों वाला बुलबुलाता पानी बना कर देने की है। तीसरी विधि किसी पेटेन्ट दवाई का इस्तेमाल है जिस में कि गन्धितों की मात्रा पर्याप्त हो। जिन लोगों में पोर्टल रक्तापूर (Portal congestion) हो या रक्ताधिक्य (Plethora) हो उन्हें सैलाइन विरेचक बहुत सुखाते हैं और उन रोगियों के मलबन्धों में इस का प्रयोग किया जाना चाहिए पर बूढ़ों तथा कमज़ोर पुरुषों में इनका प्रयोग शरीर में बड़ी शिथिलता-जनक (Depressing) होता है अतः इनका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। (देखो मेरी आयुर्वेदोन्नति सम्बन्धी पुस्तक—इस में चिकित्सा का अध्याय)

सैलाइन विरेचकों को प्रातराश से पूर्व खूब हलका करके देना चाहिए। अगर हलके घोल में न दिए जाएँ तो आमाशय में बहुत देर तक पड़े रहते हैं। और तब तक इन्तज़ार करते हैं जब तक कि पानी को ओस्मोसिस् (Osmosis) से खींचकर हलके घोल में न परिणत हो जावें। निम्न योग में गन्धित छोटी २ मात्राओं में एक दिन में कई बार दिया गया है। सो इस तरह सारा दिन भी दे सकते हैं।

प्र	मैगसल्फ	ग्रेन ३०
	गन्धकाम्ल का हलका घोल	बूदें ५
	लाइकर स्ट्रिकनीन	बूदें २
	आर्द्रक पानक	ड्राम आधा
	एक्वा मेन्थेपिप	मिलाओ १ औंस तक

इस नुस्खे में गन्धित आधार है। इसके साथ गन्धकाम्ल इसलिए मिलाया गया है ताकि गन्धितों का सुचारु घोल तैयार हो जाय। स्ट्रिकनीन को, आंतों का तनाव और उत्तेजनशीलता बढ़ाने के लिए डाला गया है। सो यह गन्धित के कार्य को अधिक करती है अतः संयोजक है। आर्द्रक संशोधक है; आध्मान तथा आंतों के उद्वेष्टन को दूर करता है। पुदीने का पानी आध्मानहर संवाही है तथा योग को सुवासित भी करता है।

(२) **एन्थ्रेसीन विरेचक**—यह रोजमर्रा के इस्तेमाल के लिए प्रशंसनीय हैं। इनमें तीन ऐसे गुण हैं जो कि इन्हें उपरोक्त प्रयोग के लिए उपादेय बना देते हैं। पहिला गुण यह है कि इन्हें पुनः पुनः देने से भी इनका असर कम नहीं होता। दूसरे ये क्षोभ (Irritation) भी बहुत नहीं पैदा करते हैं। तीसरे ये आन्त्र-भित्ति के तनाव को भी बढ़ाते हैं। कुमारी (Aloes) इस समूह का सबसे पुराना द्रव्य है जो बहुत पुराने समय से प्रयुक्त होता आया है। चूंकि इसका असर धीरे २ होता है इसलिए इसे रात या शाम के भोजन के समय देना चाहिए।

प्र कुमारी रसक्रिया (Ext. Aloes.)
विषमुष्टि रसक्रिया (Ext. Nucis vom.)
यवानी रसक्रिया (Ext. Hyoscyami.) } प्रत्येक आधा ग्रेन
जैनशियन रसक्रिया (Ext. Gent.) पर्याप्त मात्रा

ऐसी १० गुटिकाएँ बनाओ।

हिदायतें—१ गोली रात को सोने के समय।

(नोट्—जैनशियन घनरस क्रिया की मात्रा २ से ८ ग्रेन है।)

इस नुस्खे में कुमारी आधार है। विषमुष्टी (इसमें स्ट्रिकनीन होती है) संयोजक है। यवानी संशोधक है। जैनशियन संवाही है।

जिन रोगियों को अर्शस् हो उन्हें कुमारी की गुटिका विरेचन के लिए नहीं खानी चाहिए। इससे मलाशय का रक्तापूर होता है। इसे गर्भिणी को भी नहीं देना चाहिए क्योंकि कुमारी (Aloes) गर्भाशय को क्षुब्ध करती है।

कैस्कारा—इसे आजकल बहुत पसन्द किया जाता है। और इसका इस्तेमाल गोली या द्रवरस क्रिया के रूप में होता है। इसे खुशबूदार जायके वाले आध्मानहरों के साथ मिलाकर देते हैं। रात को सोते समय दिया जाता है। समय या अवधि का व्यतीत होना इस औषधि के विरेचक गुण को अधिक प्रभावी बनाता है। अकसर वानस्पतिक औषधियाँ कुछ काल तक पड़ी रहने से अपने औषधमय गुणों में कम असर या बेअसर हो जाती हैं। पर कुछ थोड़ी सी औषधियाँ ऐसी हैं जिनमें समय

प्रभाव को अधिक करता है। जैसे कि आसवों और अरिष्टों में। यही बात कैस्कारा के प्रति भी चरितार्थ होती है।

प्र		
	कैस्कारा की द्रव रसक्रिया	बूंदें ३०
	टिंचर कार्डेमम् को०	बूंदें २०
	टिंचर बेलाडोना	बूंदें ५
	मधुयष्टी की द्रव रसक्रिया	बूंदें ३०
	एक्वा क्लोरोफार्म मिलाओ	१ औंस तक

ऐसी आठ खुराकें।

हिदायतें—एक खुराक पाव भर पानी में हलकी करके रात को सोते समय पीलें।

इस नुस्खे में कैस्कारा आधार है। कार्डेमम् इलायचियों को कहते हैं। इनका टिंचर या मद्यसार आध्मानहर होता है अतः टिंचर कार्डेमम् संशोधक है। टिंचर बेलाडोना उद्वेष्टनों (Griping) को दूर करता है। मधुयष्टी सुवासित करती है और खुद भी कुछ भेदक है अतः संशोधक तथा संयोजक दोनों का कार्य करती है। एक्वा क्लोरोफार्म सुगन्धित संवाही है।

सन्नाय—या तो सन्नाय के पत्तों का क्वाथ बनाकर पिया जाता है या इसकी फलियों का काढ़ा (कषाय) दिया जाता है। औरतों के लिए इससे अच्छा और कोई द्रव्य सुख-विरेचक नहीं सिद्ध हुआ है। इसके प्रयोग बनाने की सबसे उत्तम विधि यह है कि शाम के भोजन से पहिले फलियाँ या पत्ते शीत पानी में डाल दिये जाँय और रात को इस प्रकार बना हुआ शीत कषाय पी लिया जाय। गरम करने से सन्नाय का एक

और पदार्थ भी पानी में आकर घुल जाता है जो पेट में मरोड़े (उद्वेष्टन) पैदा करता है। अकसर लोग इसमें कुछ बूंदें आर्द्रक सत्व की डाल लेते हैं ताकि उन्हें यह कषाय ठण्डा असर न करे।

रेवन्दचीनी—रेवन्दचीनी के चूर्ण से एक गोली तैय्यार की जाती है जिसे 'पिल्युला रेहाई को' कहते हैं। और एक चूर्ण तय्यार किया जाता है जिसे 'पल्व रिहाई को (ग्रेगरी का चूर्ण)' कहते हैं। इसे निम्न योग में आध्मानहर क्षारीय घूंट के रूप में भी बर्ता जाता है।

प्र	रेवन्दचीनी चूर्ण	ग्रेन ३
	सोडाबाई काब	ग्रेन १५
	स्पिरिट मारिस्टिकी	बूंदें १५
	आर्द्रक पानक	ड्राम आधा
	एक्वा मेन्थेपिप	मिलाओ १ औंस तक

ऐसी चार खुराकें।

हिदायतें—एक खुराक जब जरूरत हो।

इस नुस्खे में रेवन्दचीनी का चूर्ण और सोडाबाई कार्ब दोनों चूर्ण आधार हैं। जातीफल का मद्यसार और आर्द्रक पानक आध्मान-हर संशोधक हैं। पुदीने का पानी आध्मानहर संवाहक है।

(३) तीव्र विरेचक—इन्हें अकसर या बहुधा प्रयुक्त नहीं किया जाता है। जब खास तौर पर एक तीव्र विरेचन आवश्यक हो दिया जाता है। सर्वाङ्गश्वयथु में जब शरीर से श्वयथु का द्रव बहिष्कृत करना हो तो इन्हें प्रयुक्त किया जाता है।

'पल्व जैलप को' और 'पिल्युला कोलोसिन्थ को' योग दिये जाते हैं। स्कैमोनी और एलेटीरियम भी तीव्र-विरेचक हैं पर अब इनका प्रयोग शाज़ोनादर ही किया जाता है।

(४) **पित्तविरेचक**—इन्हें तब वर्ता जाता है कि जब भेदन के साथ ही साथ यकृत् को कुछ क्षुब्ध (Stimulate) करना हो और पित्त का प्रवाह आन्त्र में अधिक करना हो। अंग्रेज़ी में एक विकृति है जिसे Biliousness कहते हैं। इसमें इन पित्तविरेचकों का प्रयोग करना बड़ा लाभकर होता है। पारद एक मुख्य पित्तविरेचक है। इसे 'पिल्युला हाइड्रार्जराई' (नीली गुटिका) या कैलोमल के रूप में देते हैं। यदि नीली गुटिका देनी हो तो ४ से ५ ग्रेन की मात्रा में रात को देनी चाहिए और इसके बाद सवेरे एक सैलाइन विरेचन देना चाहिए ताकि पारद का शरीर से परित्याग हो जाए। यदि कैलोमल को बड़ी मात्राओं में दिया जाय तो ये बृहदान्त्र को बहुत उत्तेजित (Irritate) करता है। अतः इसे छोटी २ मात्राओं में जैसे $\frac{१}{१०}$ से $\frac{१}{६}$ ग्रेन,प्रतिदिन दिया जा सकता है। नहीं तो $\frac{१}{४}$ से $\frac{१}{२}$ ग्रेन की मात्राओं में कुछ दिनों के अरसे से दिया जा सकता है। इसके प्रयोग के बाद अगले दिन सवेरे सैलाइन विरेचक देना चाहिए।

पोडोफिलिन—वानस्पतिक पित्त-विरेचक है। आंतों में जाकर उद्वेष्टन बहुत करता है। यह कई यकृत्काशिकी (कशा लगाना से मतलब है; यकृत् को घोड़े की तरह कशा लगा कर अपने कार्य में तेज़ करने वाली) वटिकाओं में डलता है।

(५) मैकेनिकल भेदक— पेट्रोलियम का तेल आज कल पाश्चात्य देशों में भेदनार्थ बड़ा लोकप्रिय है। यह एक अच्छा सुख विरेचक है। आन्त्र की दीवार को अन्दर से स्निग्ध कर देता है; और बिलकुल भी क्षोभकारक (Irritating) नहीं है। इस से टट्टी नरम आती है। मामूली कब्ज़ कुशा है। अर्थात् मामूली कब्ज़ को ही खोलता है। इसका आधा औंस एक या दो बार दिन में दिया जाता है। इसे अकसर सोडा वाटर के साथ देते हैं। इसकी स्निग्धता और सोडा वाटर की तेजी (कटुता) दोनों एक दूसरे को उदासीन करते हैं जिस से स्वाद रोगी को नहीं अखरता है। अगर सोडा वाटर में न देना हो तो इमलशन बना कर देना चाहिए; या इस के साल्ट के साथ तैय्यार किए हुए योग देने चाहिएँ। जैसे कि क्रिस्टोलैक्स, वीरोलैक्स आदि हैं।

लिक्विड पैराफ़ीन—भी भेदन के लिए दिया जाता है। ये कर्बोदितों (Hydrocarbans) का मिश्रण है। एक पतला स्निग्ध तैल सा पदार्थ होता है। इस से आन्त्रों में कुछ भी क्षोभ नहीं होता। इसे भोजन के बाद दो दो ड्राम की छोटी छोटी मात्राओं में देना चाहिए। इसकी पूरी मात्रा एक औंस की है। कई पुरुषों में यह बड़ा मुआफ़िक आता है। बाकी दूसरे कई मनुष्यों में इसका भेदक गुण प्रगट ही नहीं होता।

एगर-एगर यह भी क्षोभजनक नहीं है और एक मैकेनिकल भेदक है। इसकी उपस्थिति आन्त्र के अन्दर की कला

में वर्तमान वातनाड़ियों के सिरों को मैकेनिकल तौर पर उत्तेजित करती है। इसका लेना कुछ मनोनुकूल नहीं होता।

(६) अन्य विरेचक—अन्य विरेचक जो प्रयुक्त किए जाते हैं पर उपरोक्त समूहों में नहीं परिगणित हुए निम्न हैं :—

एरण्ड तैल—कभी कभी विरेचन के तौर पर देने के लिए अच्छा है। ये क्षुद्रान्त्रों तथा वृहदान्त्रों दोनों पर असर करके विरेचन लाता है। इससे क्षोभ (Irritation) भी नहीं होता पर इसमें एक दोष है कि इसके बाद रोगी को कुछ कब्ज की शिकायत होती है।

गन्धक—एक हलका विरेचक है और पुरीष को नरम करता है। कन्फेक्श्यो सेन्ना (Confectio senna) में इसी लिए इसे डालते हैं। अर्शोरोगियों में पुरीष को पतला रखने के लिए इसके प्रयोग बड़े लाभ कर हैं। इस में एक दोष है कि इस से मल बदबूदार हो जाता है और अपान वायु भी बहुत बदबू वाली हो जाती है।

कई मल-बन्ध के रोगियों में वास्तविक दोष पैल्विक कोलन (Pelvic colon) का होता है। पैल्विक कोलन खाली ही नहीं होता है। इस दशा को अंग्रेजी में डिस्चेज़िया (Dyschezia) कहते हैं। इसका कारण उदर की सन्मुख दीवार की मांस-पेशियों की निर्बलता होती है। जैसे कि प्रसूताओं में प्रसव के बाद होती है; या मलाशय प्रतिक्षेप (Rectal reflex) बड़ा मद्धम पड़ा हुआ होता है। कई वातसंस्थान के रोगियों में तथा शिशुओं में अकसर मलबन्ध का यही कारण होता है। कई स्त्रियों में गर्भाशय

का पीछे की ओर गिरा हुआ होना और बूढ़ों में अष्ठीला-ग्रन्थि का बढ़ा हुआ होना मैकेनिकल तौर पर बाधा डाल कर पैल्विक कोलन को खाली नहीं होने देते हैं। यदि यह डिस्चेजिया की हालत हो तो विरेचक तब तक विरेचन में सफल नहीं होते हैं जब तक कि मल को इतना पतला न कर दें कि वह बिलकुल अर्द्ध-द्रव ही न हो जाय। और ऐसा करने के लिए विरेचकों की बड़ी मात्रायें देनी ज़रूरी होती हैं। पर विरेचकों को इन बड़ी मात्राओं में देना अनुपयुक्त होता है। इस लिए वस्तियों की या गुदवर्तियों की मदद लेनी चाहिए।

वस्तियाँ—पहिले तो वस्ति शब्द पर कुछ विचार आवश्यक है। यहाँ पर वस्ति शब्द उन वस्तियों को लक्ष्य में रख कर लिखा गया है जिन में द्रव या जल गुदा द्वारा मलाशय और बृहदान्त्र में प्रविष्ट किया जाता है।

अर्थात् गुदवस्तियों को निर्दिष्ट करके यह वस्ति शब्द प्रयुक्त किया गया है। यों तो मूत्राशय और गर्भाशय इत्यादि की भी वस्तियां हो सकती हैं, पर उन से अभिप्राय नहीं है।

इन गुदवस्तियों द्वारा चढ़ाया हुआ द्रव तीन प्रकार कार्य करता हुआ मलबन्ध को दूर करता है।

(१) मैकेनिकल तौर पर आन्त्रों को फुलाता है। और अन्त्रों के फूलने से आँतो में प्रतिक्षेपी संकोच उद्भूत होते हैं।

(२) इन वस्तियों के गरम या ठण्डा होने से भी उपरोक्त संकोच पैदा होते हैं।

(३) इन वस्तियों में ऐसे पदार्थ होते हैं जो आन्तों के संकोचों को उत्तेजित करने में समर्थ होते हैं।

इसके इलावा वस्तियाँ मल को भी नर्म करती हैं।

गुदवस्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं।—

(१) महागुदवस्ति या वृहदान्त्री।

(२) साधारण गुदवस्ति।

(३) मलाशय-वस्ति या लघ्वी गुदवस्ति।

वृहदान्त्री—इन वस्तियों में ३ पाइन्ट के लगभग द्रव प्रयुक्त किया जाता है। १ पाइन्ट २० औन्स का होता है। इस में आध सेर से ज़रा ज्यादा पानी होता है। इन वस्तियों से सारी की सारी वृहदान्त्र साफ़ हो जाती है। इन को देते समय एनीमे का डब्बा दो फ़ीट से अधिक ऊंचा नहीं उठाना चाहिए। गुदा में प्रविष्ट करने वाली रबर की नली ४ इंच से अधिक प्रविष्ट नहीं करनी चाहिए। चार इंच काफ़ी होती है। इस से ज्यादा प्रविष्ट की हुई अंदर वृहदान्त्र में अधिक दूर तक जाने की बजाय वहीं गोलमोल सी हो जाती है। इस वस्ति द्वारा सारा का सारा वृहदान्त्र धो देना अभीष्ट होता है।

(२) **साधारण गुदवस्ति**—इसका उद्देश्य यह होता है कि पानी मलाशय और पैल्विक कोलन तक पहुंच कर वृहदान्त्र के इस हिस्से से नीचे के महास्त्रोतस् (Alimentary canal)के सारे भाग को धो देवे। एक पाइन्ट पानी पर्याप्त होता है। हिजिन्सन की पिचकारी द्वारा बहुत अच्छी तरह दिया जा सकता है। यही गुदवस्ति अधिक तर प्रयुक्त होती है। अगर इस

एनीमा को शाज़ोनादर ही लेना हो तो इस में साबुन भी घोला जा सकता है। पर अकसर लेना हो तो तब केवल सादा पानी, ठण्डा या गरम, जैसा लेना उचित हो बर्तना चाहिए।

(३) मलाशय-गुदवस्ति या छोटी गुद-वस्ति—यह सिर्फ़ मलाशय पर ही प्रभाव करती है और इस में चार औन्स द्रव ही लिया जाता है। आधी मात्रा गिलसरीन की डालकर इन्हें अधिक असर वाली (उत्तेजक) बनाया जा सकता है। इस गुदवस्ति को देने के लिए एक नाशपाती की सी शकल की मालाशयिक पिचकारी बर्ती जाती है।

गिलसरीन गुदवर्तियाँ भी इसी तरह मलाशय प्रतिक्षेप को पैदा करके मलानुलोमन में सहायक होती हैं। इनके विषय में कुछ विशेष लिखना अभीष्ट नहीं है।



दसवाँ उद्बोध

अतिसार

और

ग्राही औषधियों का प्रयोग



अतिसार में निम्न उद्देश्यों को लक्ष्य में रखकर चिकित्सा की जाती है।

(१) आन्त्र से उत्तेजनाकारक पदार्थों का बहिष्कार करना।

(२) स्रावों का रोध करना।

(३) परिसर्पण (Peristalsis) को घटाना।

परिचर्या—प्रत्येक रोगी को शय्या पर लेटे रहने का आदेश करना चाहिए। यदि उदरशूल (Colicky pain) बहुत हो तो उदर पर गरम पानी में कपड़े निचोड़ कर लगाने चाहिएँ। (अर्थात् परिषेचन करना चाहिए)

पथ्य—ऐसी खुराक होनी चाहिए कि जिसका मल बहुत थोड़ी मात्रा में बने। इसलिए जौ का पानी, शरबत, हलका किया हुआ दूध आदि दिए जा सकते हैं।

औषधियाँ—सब से पहिला उद्देश्य आन्त्र के उत्तेजनाकारक पदार्थ का वहिष्कृत करना है। यदि रोगी अतिसार प्रारम्भ होने पर ही चिकित्सक के पास आया है तो अभी उत्तेजनाकारक पदार्थ सारा का सारा दस्तों द्वारा शरीर से त्यक्त नहीं हुआ होता। इसलिए निम्न योग देना चाहिए।—

प्र	एरण्ड तैल	औंस आधा
	टिंचर ओपिआई	बूंदें ५
	आर्द्रक पानक	ड्राम आधा
	म्यूसिलेज्	पर्याप्त मात्रा में।
	एक्वा मेन्थेपिप्	मिलाओ १ औंस तक

ऐसी एक खुराक। इसका इमलशन बनाएँ।

हिदायतें—तत्काल पी लें।

इस नुस्खे में एरण्ड तैल आधार है। टिंचर ओपिआई संयोजक है और उदावर्तों या मरोड़ों (Griping) को कम करता है। आर्द्रक पानक संशोधक है। म्यूसिलेज् को एक अच्छा घोल तैयार करने के लिए मिलाया गया है। और पुदीने के सत के पानी को संवाहक के तौर पर प्रयुक्त किया गया है।

स्राव (Secretion) का रोध करने के लिए ग्राही औषधों का प्रयोग होता है और परिसर्पण को कम करने के लिए प्रशामक (Sedative) औषधियों का इस्तेमाल होता है।

(१) चाक और कैल्शियम् फ़ोस्फ़ेट् अच्छे प्रशामक हैं क्योंकि उत्तेजना करने वाले आन्त्रों के अन्दर वर्तमान अम्ल को ये उदासीन कर देते हैं। इसके अतिरिक्त आन्त्र की दीवार के साथ

चिपक जाते हैं जिससे कि उत्तेजक पदार्थ जो कि आँतों में उपस्थित होते हैं, आन्त्रों पर किसी प्रकार का हानिकारक असर नहीं कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो ये आन्त्र की दीवार के अन्दर की पृष्ठ की सुरक्षा करते हैं और अम्लों को उदासीन करते हैं और इन युक्तियों के आधार पर अच्छे प्रशामक हैं।

(२) ग्राही—ग्राही औषधियाँ तीन प्रकार की हैं।—

(क) वानस्पतिक ग्राही—इनमें अकसर टैनिक अम्ल होता है जो संग्राही का कार्य करता है। कत्था, लॉगवुड आदि द्रव्य इसी श्रेणी में परिगणित होते हैं।

(ख) अनैन्द्रियक ग्राही—जैसे कि सीसक सिरकित जस्तगन्धित तथा ताम्रगन्धित।

(ग) अनैन्द्रियक अम्ल—जैसे कि गन्धकाम्ल का हलका घोल।

(३) परिसर्पण को घटाने के लिए अहिफेन का कोई योग देना चाहिए।

निम्नलिखित योगों में इन दवाइयों के मिश्रणों को दिखाया गया है।

प्र	टिंचर ओपियाई	बूंदें ३
	टिंचर कटेचु	बूंदें २०
	चाक का मिश्रण	
	(Mist. Creta) मिलाओ १ औंस तक।	
	ऐसी चार खुराकें।	

हिदायतें—एक खुराक प्रति छे घण्टे बाद।

इस नुस्खे में अहिफेन परिसर्पण को घटाता है। कटेचु वानस्पतिक ग्राही है। चाक का मिश्रण अम्लों को उदासीन करता है और आध्मानहर (Carminative) है।

दूसरा योग—

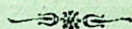
प्र	हलका गन्धकाम्ल सुगन्धित	बूंदें १५
	ग्लिसरीन	बूंदें १५
	क्वासरी का क्वाथ	मिलाओ १ औंस तक।
	ऐसी तीन खुराकें।	

हिदायतें—एक खुराक दिन में तीन बार, भोजन के बाद।

इस नुस्खे में अनैन्द्रियक ग्राही के साथ वानस्पतिक ग्राही को मिलाया गया है। क्योंकि इसमें अनैन्द्रियक अम्ल है इसलिए इसे भोजन के बाद दिया जाता है।

चिरकालीन अतिसारों में कारण पता लगाना मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। चिकित्सा कारण पर आश्रित होती है। इन चिरकालीन रोगियों में ग्राही द्रव्यों को अन्धाधुन्ध नहीं वर्तना चाहिए। ऐसा करना बड़ा नुकसान-दे होता है। चिरकालीन अतिसारों की चिकित्सा इस संक्षिप्त पुस्तक में नहीं दी जा सकती है।

ग्यारहवाँ उद्‌बोध



पित्ताशय के रोग

पित्त-विरेचक और पित्त-जीवाणुहर



कित्सा के उद्देश्य क्या होते हैं ?— जब पित्तस्त्रोतों, पित्तवाहिनियों, पित्ताशय, पित्ताशय-वाहिनी, और मुख्य पित्त-वाहिनियों में कहीं पुरानी शोथ हो तो हमारा लक्ष्य पित्त को पतला करना होता है ताकि पित्त का प्रवाह समीचीन प्रकार से हो सके और पित्ताश्मरियां न बन सकें। इसके अतिरिक्त पित्तमार्गों को जीवाणु रहित करते हुए उन्हें शोथ रहित करने का प्रयत्न करना होता है।

परिचर्योपचार—जब शोथ का आक्रमण तीव्रावस्था में हो तो रोगी को शय्यारूढ़ रखना चाहिए। और यकृत्-देश पर गरम पुल्टिसें बांधनी चाहिएँ। अगर पुरानी शोथ हो तो रोगी के लिए शय्यारूढ़ होने की कोई जरूरत नहीं होती है। वह चलता-फिरता रह सकता है और उसे हलकी २ व्यायामें भी करनी चाहिएँ। पर सदा किसी ऐसे आसन में नहीं बैठना चाहिए

जिससे पित्ताशय पर दबाव पड़े और नाहीं कोई ऐसी व्यायाम करनी चाहिए जिससे कि पित्ताशय दबता हो। सो न तो उसे सुकड़ कर बैठना चाहिए न पथरीले मार्ग पर चलने वाली बैल गाड़ी पर बैठना चाहिए जिससे कि झटके आएँ इत्यादि। सर्दी से उदर का विशेषतः उदर के यकृत्प्रदेश का बचाव रखना चाहिए पर इस से यह मतलब नहीं कि वो कटि के चारों ओर ज़ोर २ से बन्ध बान्धे। जो उदर के चारों ओर लपेटे हुए बन्ध होवें वे कसे हुए नहीं होने चाहिएँ। उनका कार्य सर्दी को रोकना होना चाहिए, न कि पित्ताशय को भींचना।

पथ्य—जिन भोजनों में कौलेस्टरौल की बहुत मात्रा हो जैसे दूध, मलाई, मक्खन, अण्डे की ज़र्दी हरे मटर वगैरह नहीं खाने चाहिएँ। मांसाहारियों को जानवरों के गुर्दे, जिगर, दिमाग़ वगैरह की बोटियां नहीं खानी चाहिएँ। चाकोलेट और नारंगियाँ भी नुकसानदे होती हैं। रोगी को इनके इलावा वो कोई भी चीज़ जो उसके तजुर्बे से उसे न सुखाती हो नहीं खानी चाहिए। अर्थात् जिस चीज़ के खाने से दर्द बढ़ती हो नहीं खानी चाहिए। भोजन छोटी २ मात्राओं में और कई वार किए जाने चाहिएँ। अगर आमाशय में अफ़ारा बहुत होता हो तो भोजन सूखे होने चाहिएँ। मद्यपान को कतई परित्याग कर देना चाहिए पर उसे जल का एक गिलास सवेरे और शाम ज़रूर पीना चाहिए।

औषधियें—औषधियें मुख्यतः दो प्रकार की प्रयुक्त की जाती हैं।—(१) पित्त विरेचक (२) पित्त–जीवाणुहर (Biliary antiseptics)

(१) पित्त विरेचक वो औषधियाँ होती हैं जो पित्त के स्रवण (Secretion) और प्रवाह (Flow) की वृद्धि करें; तथा शरीर से पित्त के परित्याग को बढ़ाने में समर्थ हों। प्रथम प्रकार की औषधियाँ जो पित्त के स्रवण को बढ़ाती है और इस प्रकार पित्त के प्रवाह को भी वेगवान् करती हैं अंग्रेजी में (Direct cholagogues) कहलाती हैं। हम इन्हें पित्त-विस्रावक या पित्त-स्रंसक के नाम से पुकारेंगे। दूसरी औषधियाँ जो शरीर से होने वाले पित्त के विसर्जन को अधिक कराती हैं अंग्रेजी में(Indirect cholagogues)कहलाती हैं। हम इन्हें पित्त-विसर्जक के नाम से पुकारेंगे।

पित्त-स्रावक बहुत थोड़ी सी औषधियाँ है—

(१) पित्त के लवण (Bile salts), (२)सैलिसिलेट् (३) और कुछ अंश तक पोडोफिलिन तथा (४) यूओनिम

मुख्य पित्त - विसर्जक (Indirect choLagogues) निम्न हैं—

(१) पारद के समास (२) मैग्नीशियम् तथा सोडियम के गन्धित।

पारद के समासों का प्रभाव यह होता है कि ये पक्वाशय और क्षुद्र आन्त्र के परिसर्पण को वेगवान बनाते हैं। जिस का परिणाम यह होता है कि पित्त का विसर्जन शरीर से अधिक होने लगता है। मैग्नीशियम और सोडियम के गन्धित, ख़ास तौर पर मैग्नीशियम के गन्धित यदि सान्द्र घोलों में दिए जाँय तो

पित्ताशय के संकोचों को बढ़ाते हैं जिससे कि पित्त आन्त्र में अधिक मात्रा में प्रविष्ट होती है और इसीलिए शरीर से भी अधिक मात्रा में विसर्जित होती है।

पित्तजीवाणुहर— इनमें सैलिसिलेट् और हैग्ज़ेमीन परिगणित होते हैं। यों तो हैग्ज़ेमीन का जीवाणुहर प्रभाव अम्लीय माध्यम में होता है। पर पित्त पर क्षारीय माध्यम होते हुए ही हैग्ज़ेमीन का जीवाणु-हर प्रभाव होता है। इसका कारण पित्त में पित्तलवणों (Bile salts) की उपस्थिति समझी जाती है।

पित्तविरेचक तथा पित्त-जीवाणुहर या तो पृथक् पृथक् रूप में दिए जाते हैं या योगों में मिलाकर दिए जाते हैं। पित्तलवण फैल बोवाइनम प्यूरिफिकेटस् (शुद्ध गोपित्त) में उपस्थित होते हैं। रोगियों को ५ ग्रेन की मात्राओं में केरेटिन की कैप्स्यूलों में डालकर भोजन के बाद खाने को कहा जाता है। टैब्लोजेस्टिन एक पेटेन्ट दवा है। इसमें, सोडियम का ग्लाइको-कोलेट् सोडियम के सैलिसिलेट् के साथ मिलाकर तैयार किया हुआ होता है। इसी तरह कोलेलिन भी एक पेटेन्ट दवा है इसमें कोलालिक अम्ल होता है। फैलेमीन भी एक पेटेन्ट दवा है इसमें पित्त के लवण और हैग्ज़ेमीन को मिलाया हुआ होता है। सो अगर पित्त के लवण देने हों तो बजाए शुद्ध गोपित्त को देने के उपरोक्त पेटेन्ट दवाइयों में से कोई बर्ती जाती है।

हैग्ज़ेमीन को १० ग्रेन की टिकियों में दिन में तीन बार करके देते हैं। या एक बड़ी मात्रा में रात को सोने से पहिले देते

हैं। मूत्रसम्बन्धी चिकित्सा के अध्याय में ये बता दिया जायगा कि हैग्ज़ेमीन से शरीर में ये फौर्मेल्डिहाइड् बन जाता है जो मूत्रमार्गों में जीवाणु-हरका कार्य करता है। पर अधिक मात्रा में बना हुआ फौर्मेल्डिहाइड् मूत्राशय के लिए क्षोभ-कर होता है। यदि हैग्ज़ेमीन रोगी के मूत्राशय का अनभिवाञ्छित क्षोभ करती हो तो पोटाशियम् सित्रित की पूर्णमात्राओं को देकर मूत्र को क्षारीय रखना चाहिए। हैग्ज़ेमीन से फौर्मेल्डिहाइड् तभी बनता है जब कि मूत्रअम्लीय प्रतिक्रिया वाला हो। यदि ऐसा न हो तो न फौर्मेल्डिहाइड् ही बनता है और न मूत्राशय का क्षोभ ही हो सकता है। पोटाशियम् सित्रित की मात्रा मूत्र को क्षारीय रखती है। पोटाशियम् सित्रित शरीर में जाकर तन्तुओं में पोटाशियम कार्बनित बन जाता है और मूत्र में इसी तरह विसर्जित होता है। पोटाशियम् कार्बनित मूत्र में विसर्जित होकर मूत्र को क्षारीय प्रतिक्रिया वाला रखता है।

पित्त-विसर्जकों को पित्तस्रंसकों तथा पित्त जीवाणु-हरों के साथ ही साथ प्रयुक्त किया जाता है। अर्थात् जहाँ एक ओर रोगी को पित्तस्रंसक तथा पित्त जीवाणु-हर दिए जा रहे होते हैं। वहां दूसरी ओर पित्त-विसर्जक भी दिए जा रहे होते हैं। पारद के समास या तो बहुत छोटी २ मात्राओं में प्रति-दिन दिए जाते हैं या एक बड़ी मात्रा में (विरेचक मात्रा में) सप्ताह में एक बार दिए जाते हैं। यदि मैग्नीशियम् गन्धित को देना हो तो सान्द्र घोलों में प्रातराश से पूर्व देना चाहिए।

अब एक गोली का नुस्ख़ा लिखा जाता है जो कि बहुत अच्छी पित्त विरेचक है।

प्र पोडोफिल रेज़ीन

एक्सट्रैक्ट नक्स वोमिका	प्रत्येक आधा ग्रेन
एक्सट्रैक्ट बैलाडोना	ग्रेन एक चौथाई
जिंजरिन्	ग्रेन $\frac{1}{10}$

'पिल्युला कोलोसिन्थ को' मिलाओ ग्रेन ४।

ये एक वटी में पड़ने वाली औषधियों की मात्राएँ हैं। ऐसी जितनी वटियां इच्छित हों बनालो।

हिदायतें—१ वटी को जिस दिन चिकित्सक आदेश करे सवेरे खा लो।

पोडोफिलिन इस वटी में आधार है। इसका कार्य पित्त-विरेचन है। बैलाडोना और जिंजरिन् संशोधक हैं ये उद्वेष्टन (Griping) को हटाते हैं। कोलोसिन्थादि वटी विरेचक संवाही है जो आन्तों में आई हुए पित्त को विरेचन प्रभाव के कारण शीघ्रता से विसर्जित कराती है।

बारहवाँ उद्बोध

गठिया, अश्मरी, मेह व वृक्क

गठिया



में अभी तक यह नहीं मालूम कि गठिया में किस प्रकार की विकृति शरीर में उपस्थित होती है। पर जितना भी कुछ मालूम है उसका निष्कर्ष यह है कि इस रोग में रोगी का शरीर प्यूरीन तथा प्यूरीन के विश्लेषण से उत्पन्न होने वाले पदार्थों जैसे यूरिक अम्ल आदि का उचित प्रकार से उपयोग तथा विसर्जन करने में असमर्थ होता है। इस ज्ञान के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि चिकित्सा के तीन मुख्य लक्ष्य होने चाहिएँ।

(१) प्यूरीन का भक्षण सीमित या परिमित किया जाय।

(२) इनका विश्लेषण शरीर में पूर्ण किया जाय।

(३) तथा इनका विसर्जन भी शरीर से बढ़ाया जाय।

साधारण परिचर्या—तीव्र गठिये (Gout) में रोगी को पूर्ण विश्राम कराना चाहिए। अक्सर रोगियों का पैर रुग्ण होता है ऐसी हालत में तो पूर्ण विश्राम अपने आप ही बड़ा



पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

जरूरी हो जाता है। पाँव को ऊपर उठा देना चाहिए और रुई से लपेट दें। किसी उड़नशील (Evaporating) घोल की टकोर देना रोगी के लिए बड़ा शान्तिकर (Comforting) होता है। ये उड़नशील घोल उत्तेजक गुण वाला नहीं होना चाहिए। चिरकालीन गठिये में बजाए विश्राम के व्यायाम करवाना चाहिए। क्योंकि व्यायाम से प्यूरीनों का शरीर में विश्लेषण होता है और इसलिए यह बड़ी लाभप्रद होती है।

पथ्य—गठिये में वह भोजन सबसे उत्तम होता है। जिसमें से कि प्यूरीनों को जहाँ तक हो सके बहिष्कृत किया हुआ हो। यों तो प्यूरीनें सब प्रकार के मांस भोजनों में होती हैं पर अन्तरावयवों (यकृत्, वृक्क आदि) तथा मांस रसों (शोरबे) आदि में अधिक मात्रा में होती हैं। वानस्पतिक भोजनों में मटर, ओटमील, एस्पैरेगस, प्याज़ में ये होती हैं और इनके अतिरिक्त चाय, कहवा, माल्ट की शराबें (जैसे जौ की शराब आदि) में भी होती हैं।

ये होना बड़ा कठिन है कि रोगी कतई प्यूरीनों से रहित भोजन का सेवन करने लग जाय। क्योंकि इस प्रकार का उपरोक्त पदार्थों रहित भोजन खाना उसके लिए मुश्किल होता है। इसलिए चिकित्सक का उद्देश्य केवल इतना ही होता है कि जहाँ तक हो सके रोगी प्यूरीनों रहित भोजन करे। उपरोक्त पदार्थों की कम से कम मात्रा भोजन में रक्खे। शराब आदि का सेवन तथा उपरोक्त भोजन का आहार बड़े संयम से करे। अर्थात्

कम से कम करे। भिन्न २ रोगियों में उनकी पाचनशक्ति तथा रुचि के अनुसार चिकित्सकों को जुदा जुदा सलाहें देनी पड़ती हैं।

औषधियाँ—तीव्र गठिये में कौल्चिकम विशेष प्रभाव रखती है। ये किस प्रकार रोग पर असर करती है इसका अभी तक हमें ज्ञान नहीं। इसे अकसर क्षारों के साथ दिया जाता है। निम्न योग उत्तम है।

प्र पोटाशियम बाइकार्ब
पोटाशियम सिट्रेट प्रत्येक १५ ग्रेन
वाइनम कौल्चिसाई बूंदें १५
स्पिरिट क्लोरोफार्म बूंदें १०
एक्वा मैन्थेपिप् मिलाओ १ औंस तक
ऐसी तीन खुराकें लाओ

हिदायतें—एक खुराक प्रति चार घण्टे के बाद दो।

इस नुस्खे में कौल्चिकम आधार है। और इसका गठिये पर विशेष प्रभाव होता है। पोटाश के बाइकार्बोनेट् और सिट्रेट् को मूत्र की अनुचित रूप से अधिक हुई २ अम्लीयता को दूर करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। स्पिरिट क्लोरोफार्म और एक्वा मैन्थेपिप् योग को रुचिकर और स्वादु बनाने के लिए हैं।

यदि ये अभिप्रेत हो कि नुस्खा कुछ सुख-विरेचक भी हो तो पोटाश के समासों की जगह ३० ग्रेन मैग्नेशियम सल्फेट् और १० ग्रेन मैग्नेशियम कार्बोनेट् को स्थानापन्न किया जा सकता है। यहाँ पर यह स्मरण रहे कि कौल्चिकम् भी थोड़ी बहुत सुख-विरेचक है। चिरकालीन गठिये में कौल्चिकम् लाभकर

नहीं होती है। और इसलिए इस चिरकालीन गठिये में कौल्चिकम् का प्रयोग व्यर्थ होता है। पर ग्वैकम की रेज़ीन एक और औषध है जो चिरकालीन गठिये पर असर दिखाती है। इस रेज़ीन के १० ग्रेन कैप्स्यूल या कैशट में डालकर रोगी को खाने के लिए देने चाहिएँ।

यह देखा गया है कि पित्त-विरेचक यूरिकाम्ल के शरीर-परित्याग या विसर्जन (Elimination) में लाभकर होते हैं। इसलिए पारद के समास को (जैसे कैलोमल प्रभृति) विरेचनार्थ तीव्र गठिये के इलाज के प्रारम्भ से ही प्रयुक्त कर देना चाहिए। और चिरकालीन गठिये में कुछ २ समय के अन्तर से छोटी २ मात्राओं में प्रयुक्त करना चाहिए।

यूरिक-अम्ल के घोलक या विलायक--- इस उद्देश्य से पहिले पहिल लीथियम के समासों का प्रयोग प्रचलित हुआ। यद्यपि लीथियम के यूरिकाम्ल से बने समास काच की परीक्षण नलिका में बड़े विलयन शील हैं पर शरीर में इनका निर्माण होना बड़ा कठिन है। एक तो लीथियम के समास शरीर में अधिक मात्रा में प्रविष्ट ही नहीं किए जा सकते हैं दूसरे शरीर में बने हुए सोडियम के (यूरिकाम्ल वाले) लवणों को तोड़ कर लीथियम के लवण बनाने में (ये लीथियम के) लवण असमर्थ-प्राय ही हैं। अतः इनका प्रयोग निरर्थक ही है। ये लाभकर नहीं हैं। इनसे यूरिकाम्ल का शरीर से विसर्जन बहुत थोड़ी और निश्चित सी मात्राओं में होता है।

इसके बाद पाइपेराज़ीन, लाइसेटॉल प्रभृति अनेकों पदार्थों की धूम मची। पर ये सब के सब समय की कसौटी पर निकम्मे साबित हुए हैं। हाँ एक एटोफैन या जिसे एगोटैन व सिन्कोफैन भी कहते हैं वाके में यूरिकाम्ल का विसर्जक सिद्ध हुआ है। इसको १०-१५ ग्रेन की मात्राएं दिन में तीन बार दी हुई विसर्जित यूरिकाम्ल की मात्रा को त्रिगुण कर देती हैं। यदि कोई यूरिकाम्ल विलायक प्रयुक्त करना हो तो इसे ही प्रयुक्त करना चाहिए। पर इसके प्रयोग में एक बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए। वह ये कि यकृत् में जाकर इसका विश्लेषण होता है और अगर किसी चिरकालीन गठिये के रोगी का यकृत् भी दोषपूर्ण हो तो एटोफैन बहुत नुकसान करता है। इसके देने से विषजन्य (Toxic) कामला हो जाती है। जब एटोफैन का प्रयोग करना हो तो इसे २ या ३ दिन देकर चार या पांच दिन के लिए छोड़ देना चाहिए। इस तरह चार या पांच दिन के व्यवधानों से दो या तीन दिनों के लिए उपरोक्त मात्राओं में उपरोक्त प्रकार एटोफैन का प्रयोग किया जाता है। प्रयोग काल में द्रव और क्षारों का पर्याप्त प्रयोग किया जाता है ताकि रोगी के मूत्र की अम्लीयता न अधिक होवे।

सोल्युरोल (थाइमिक एसिड्) इस रोग के लिए लाभप्रद समझा जाता है।

भौतिक चिकित्सा—मर्दन तथा जल चिकित्सा भी इस रोग को दूर करने में सहायक होते हैं। इनके प्रयोग से, शोथ से पैदा हुए २ शरीर के लिए हानिकारक पदार्थों का विसर्जन भली

प्रकार आसानी से हो जाता है। स्पा (Spa) में की गई चिकित्साओं का इस रोग पर बड़ा लाभ होता है क्योंकि स्पा में रोगियों के भोजन, उनकी दिनचर्या का नियमन, सुख विरेचकों द्वारा आंतों की सफाई, मूत्रलों द्वारा मूत्र संस्थान की विशुद्धि, मर्दन जल चिकित्सा आदि पर बहुत ध्यान दिया जाता है।

यूरिक-अम्ल अश्मरी

परिचर्या तथा पथ्य इसमें उसी प्रकार हैं जैसे कि गठिये में।

औषधियाँ— अश्मरीहर औषधियों को अंग्रेजी में Lithontriptics (अश्मरीभञ्जक) के नाम से पुकारा जाता है। ये मूत्र की अम्लता को घटाती हैं। पोटाशियम का सिट्रेट इस उद्देश्य से बहुत बर्ता जाता है।

पोटाशियम सिट्रेट्, पोटाशियम कार्बोनेट् की तरह आमाशय में उदासीन नहीं होता है पर सिट्रेट के रूप में ही जज़ब हो जाता है। इसके बाद शरीर के तन्तुओं में जाकर ये कार्बनित में विश्लिष्ट हो जाता है और रक्त में कार्बनित रूप में आकर वृक्कों द्वारा कार्बनित अवस्था में विसर्जित होता हुआ मूत्र की अम्लीयता को घटा देता हैं या उसे क्षारीय प्रक्रिया वाला ही बना देता है। चूंकि क्षारीय मूत्र में अम्ल स्वतन्त्र अवस्था में नहीं रह सकता है अतः इस यूरिकाम्ल का कंकर या रोड़ी घुल जाती है। और इस तरह बजरी या मोटी दाने की तहर के दाने मूत्र में आने बन्द हो जाते हैं।

नैसर्गिक जलों को भी जिन में मूत्रल समास होते हैं जिस उद्देश्य से प्रयुक्त किया जाता है वह ये है कि मूत्र की मात्रा को बढ़ा देते हैं जिससे यूरिकाम्ल अधिक मात्रा में घुल सकता है और बजरी या रेत मूत्र में आनी बन्द हो जाती है। इस उद्देश्य से विची (Vichy) और Contrexeville इत्यादि नैसर्गिक जलों का प्रयोग होता है।

आक्ज़ालिकाम्ल-मेह

इस मेह को दूर करने के लिए उन पदार्थों को भोजन से निकाल देना चाहिए कि जिन में आक्ज़ालिकाम्ल हो या कैल्सियम धातु होवे। (नोट्-यूरिकाम्ल की तरह औक्ज़ालिकाम्ल की अश्मरियाँ भी बहुधा मूत्र में उपस्थित होती हैं।) दूध, अण्डे, चाय, कोको, वनस्पतियों के मूल तथा शाकादि, रेवन्दचीनी, प्रभृति पदार्थ भोजन में नहीं होने चाहिएँ। भोजन रोटी, चावल, धान्यों, दालों, मक्खन, कहवा और अगर रोगी मांसाहारी हो तो मांस मछली वगैरह वाला होना चाहिए। आलुओं और सेवों को परिमित मात्रा में खाना चाहिए।

मैग्नेशियम के लवण औक्ज़ालिकाम्लमेह में अश्मरि-हरों का कार्य करते हैं। कैल्सियम आक्ज़लेट् को ये मैग्नेशियम आक्ज़लेट में बदल देते हैं। मैग्नेशियम आक्ज़लेट् कैल्शियम आक्ज़लेट से अधिक विलयन शील होते हैं। इस कार्य के लिए, मैग्नेशियम सल्फेट् या कार्बोनेट् या कैल्साइन्ड मैग्नेशिया के ३० ग्रेन प्रतिदिन देने चाहिएँ। इतनी मात्रा पर्याप्त होती है।

पोटाशियम सिट्रेट् भी आक्ज़लेट् के विलयन को बढ़ाता है क्योंकि ये आक्अलेटों के साथ दोहरा समास बना लेता है।

प्रस्फुरित-मेह

प्रस्फुरितों के भी निक्षेप हो जाते हैं। जब कि मूत्र की अम्लीयता कम हो तो कैल्सियम् फ़ौस्फेट का निक्षेप धूलि रूप में (दो रूप होते हैं, एक तो धूलि रूप, दूसरा स्फटिक रूप इसलिए जो स्फटिक रूप न हो उसे धूलि रूप कहा गया है।) मूत्रमें प्रगट हो जाता है। इसलिए भोजन ऐसा होना चाहिए कि जिस में प्रस्फुरितों और कैल्सियम की कम मात्राएँ होवें इसके लिए आक्ज़ालिकाम्ल-मेह वाला ही उपरोक्त भोजन प्रस्फुरित मेहों में भी देना अच्छा होता है।

औषधियाँ—औषधियाँ ऐसी देनी चाहिएँ जो मूत्र की अम्लीयता बढ़ाएँ। इसके लिए सोडियम का एसिड फौस्फेट् १५ से २० ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन बार देना चाहिए। इसे सादे तौर पर साधारण जल में घोल कर पिला देते हैं।

औषधियाँ जो मूत्र पर प्रभाव करती हैं

तीन प्रकार की औषधियों का वर्णन इस अध्याय में किया जायगा।

(१) जो मूत्र की प्रतिक्रिया को परिवर्तित करती हैं। (२) जो मूत्र को जीवाणु-रहित करती हैं। और (३) जो मूत्र की राशी को बढ़ाती हैं।

(१) प्रतिक्रिया प्रवर्तक—

(क) वो औषधियाँ जो मूत्र की अम्लीयता को घटाती हैं—पोटाशियम सिट्रेट्, टार्टरेट्, विकर्बनित तथा सोडियम विकर्बनित मूत्र की अम्लीयता को घटाती हैं। सिट्रेटों के विषय में पहिले ही विचार किया जा चुका है। इन औषधियों को बैसिल्लस कोलाई के संक्रमण में भी प्रयुक्त किया जाता है। इस लिए नहीं कि क्षारीय प्रक्रिया वाला मूत्र बैसिल्लस कोलाई का घातक या वृद्धि-नाशक होता है पर इस उद्देश्य से कि बैसिल्लस कोलाई से पैदा हुई हुई विषें इन क्षारों द्वारा उदासीन हो जाती हैं और फिर ज्वर इत्यादि विष-संचार के शारीरिक लक्षणों का निराकरण हो जाता है। उपरोक्त विचार में कितनी सत्यता है ये अभी परीक्षणों द्वारा सिद्ध नहीं हुआ है अतः इसे विचारों की श्रेणी में ही परिगणित करना चाहिए, सिद्धान्तों की श्रेणी में नहीं।

(ख) वो औषधियाँ जो मूत्र की अम्लीयता को बढ़ाती हैं—

एसिड् सोडियम फौस्फेट और अमोनियम बैंजोएट् मूत्र की अम्लीयता को बढ़ाते हैं।

एसिड् सोडियम फॉस्फेट स्वाभाविक तौर पर मूत्र में होता है। ये मूत्र की अम्लीयता बढ़ाने के लिए बहुत ही उत्तम है। इस के १० से ३० ग्रेन सादे पानी में बहुत आसानी से घुल जाते हैं। अगर इसे बड़ी मात्राओं में दिया जाय तो ये अतिसार करता है।

अमोनियम बैंज़ोएट् इसलिए अम्लीयता करता है चूंकि इससे शरीर में जाकर हिप्यूरिक एसिड् बन जाता है। इसका लेना विकलता करता है। पर इसे निम्न विधि से आसानी के साथ दे सकते हैं।

प्र अमोनियम बैंज़ोएट्— ग्रेन १५
टिंचर लवैण्डर को० बूंदें २०
एक्वा डिस्टिलेटा मिलाओ १ औंस तक।
ऐसी तीन खुराकें लाओ।

हिदायतें—१ औंस की खुराक दिन में तीन बार भोजन के बाद।

(२) मूत्र के जीवाणु हर—

(क) जो अम्लीय प्रतिक्रिया वाले मूत्र में जीवाणु हर होते हैं— हैग्ज़ेमीन एक ऐसा ही पदार्थ है। ये अमोनिया और फार्मेल्डिहाइड् के घनी-भवन से बनता है। अम्ल को उपस्थिति में ये अपने घनीभूत हुए पदार्थों में विश्लिष्ट हो जाता है। इससे मूत्र में फॉर्मेल्डिहाइड् निकल आता है जो कि जीवाणु-नाशक होता है। हैग्ज़ेमीन के १० ग्रेन दिन में तीनवार मुखद्वारा दिए हुए मूत्र में फार्मेल्डिहाइड् का ५००० में १ का घोल बनाते हैं। हेग्ज़ेमीन को गोलियों में दिया जाता है। शुरू में ५ ग्रेन की गोलियों को दिन में तीन वार देते हैं। इसके बाद इसे बढ़ा कर १५ से २० ग्रेन तक कर देते हैं। इसे हमेशा खाली पेट देना चाहिए ताकि आमाशय रस से विश्लिष्ट न हो जावे। इसे कभी भी अम्लीय प्रतिक्रिया वाले योग में मिला कर नहीं देना चाहिए

चूंकि ऐसा करने से ये दवाई की बोतल में ही विश्लिष्ट हो जाती है। अगर मूत्र की प्रतिक्रिया क्षारीय हो तो तब भी इसके देने से कुछ लाभ नहीं होता है। ये निरुपयोगी हो जाती है। इस लिए इस उद्देश्य से कि मूत्र की प्रतिक्रिया अम्लीय हो, एसिड् सोडियम फौस्फेट् को भोजन के बाद देते हैं और हेग्ज़ेमीन को अलग भोजन से पहिले देते हैं।

जो जीवाणु अम्लीय प्रतिक्रिया वाले मूत्र में वृद्धि पाते हैं उनके लिए हैग्ज़ेमीन विशेष रूप से घातक होती है। जैसे कि बैसिलस् कोलाई, टाइफोयड् और क्षय के जीवाणु। अगर अधिक मात्राओं में दी जाय तो ये वृक्कों और मूत्राशय को क्षुब्ध करती है तथा त्वचा पर स्फोट पैदा करती है।

हैक्ज़ेमीन का सोडियम एसिटेट् जिसे सिस्टोप्यूरीन् भी कहा जाता है कई चिकित्सकों की सम्मति में हैक्ज़ेमीन की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है। इस की मात्रा २० ग्रेन है।

(ख) क्षारीय प्रतिक्रिया में भी सफल होने वाले जीवाणुहर—ये निम्न पदार्थ हैं।

(i) बोरिक एसिड्
(ii) सैलौल
(iii) एक्रिफ़्लेवीन्
(iv) बुकु (Buchu)
(v) उवा अर्सार्ई (Uva ursi)
(vi) श्वेत चन्दन
(vii) कबाब चीनी

(viii) कोपेबा

बुकु से लेकर कोपेबा तक के पदार्थों में अपने अपने उड़नशील तेल होते हैं वही जीवाणु-हर होने के कारण मूत्र को जीवाणु-रहित करते हैं। ये तैल वृक्कों द्वारा विसर्जित होते हैं इसीलिए तो मूत्र में परित्यक्त हुए २ मूत्र को जीवाणु-रहित करने में समर्थ होते हैं।

बोरिक एसिड् एक अच्छा जीवाणुहर है। खास कर जबकि मूत्र अमोनियामय हो। पर बड़ी मात्राओं में ये अजीर्ण करता है। इसे खूब हलका करके और भोजन के बाद देना चाहिए।

प्र बोरिक एसिड् ग्रेन १० से १५
टिंचर हायोस्यामस् बूंदें २०
ग्लिसरीन ड्राम १
बुकु का क्वाथ मिलाओ १ औंस तक
ऐसी तीन खुराकें लाओ।

हिदायतें—प्रतिदिन भोजन के बाद दिन में तीन वार पियो।

इस नुस्खे में बोरिक एसिड् आधार है। हायोस्यामस् मूत्रमार्ग का प्रशामक है। ग्लिसरीन योग को रुचिकर और स्वादु बनाने के लिए डाली गई है। बुकु का क्वाथ मूत्रल संवाही है। साथ ही उड़नशील तेल की उपस्थिति के कारण कुछ अंशों में मूत्र के लिए जीवाणुहर भी है।

श्वेत चन्दन का तेल ५ से १० बूंदों की मात्राओं में कैप्स्यूलों में दिया जाता है। इसे भोजन के बाद देना चाहिए। ये गोनोकोक्कल और स्टैफिलोकोक्कल आक्रमणों में बड़ा लाभप्रद होता है।

अन्य मूत्र जीवाणुहर द्रव्य, कैप्रोकॉल, न्यूरोट्रोपीन, पाइरिडियम हैं। पर इनके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ नहीं लिखा जायगा।

(३) मूत्रराशी वर्द्धक—यों तो कई मूत्रल औषधियाँ हैं। पर मूत्रराशी को बढ़ाने की सबसे सुगम और बड़ी उत्तम विधि पानी का बड़ी २ मात्राओं में रोगी को पिलाना है। ऐसे कई नैसर्गिक जल हैं जो मूत्रल असर रखते हैं। इनका बड़ी मात्राओं में पिलाना सर्वोत्तम है। इनमें से दो तीन के नाम विचो, विट्टेल, कौन्ट्रेक्सिविले आदि हैं। यदि सादे पानी में भी थोड़ा सा क्षार मिलाकर बड़ी मात्राओं में पिला दिया जाय तो अभिवाञ्छित अर्थ सिद्ध हो जाता है। अर्थात् पर्याप्त बड़ी राशियों में मूत्र-विसर्जन हो जाता है।

वृक्क शोथ

वृक्क शोथ की चिकित्सा में करण दृष्टि से (Actively) कुछ भी नहीं कर सकते हैं। ये एक ऐसा रोग है जिसका इलाज प्रातीक्षिक होता है; और इसके इलाज में मुख्य ध्यान इस बात पर केन्द्रित होना चाहिए कि कोई भी क्रिया ऐसी न की जाय जिससे कि रोगी को फायदे की बजाए नुकसान होवे। इसलिए कुछ ऐसी हिदायतें हैं जो कि प्रतिषेधात्मक हैं।

(१) मूत्रल पदार्थों को मत दो । क्योंकि उनका इस्तेमाल फिजूल होता है ।

(२) वृक्कों को प्रक्षालित करने का प्रयत्न मत करो। क्योंकि ऐसा नहीं हो सकता है ।

(३) रक्त-दबाव को कम करने का यत्न मत करो। क्योंकि ऐसा करने से फायदे की बजाए नुकसान अधिक होगा।

(४) मूत्र में उपस्थित एल्ब्यूमिन की मात्रा से मत उलझो। इसे चिकित्सा का आधार मत बनाओ क्योंकि मात्रा पर चिकित्सा अवलम्बित रखना मूर्खता है ।

(५) रोगी को अनावश्यक मात्रा में भोजन मत दो। इससे रोगी का रोग तो कम होना दूर रहा उल्टा रोगी की अवस्था ही बिगड़ती है ।

इस रोग में चिकित्सा के लक्ष्यों का निरूपण करना कठिन नहीं होता, पर उन लक्ष्यों को क्रिया में कैसे परिवर्तित किया जाय ? ये प्रश्न दुस्तर होता है ।

लक्ष्य निम्न होते हैं—

(१) रुग्ण हुए २ अन्तरावयवों का (अर्थात् वृक्कों आदि का) कार्य जितना हो सके कम किया जाय ।

(२) इन रुग्ण अन्तरावयवों को स्वस्थ करने की कोशिश की जाय । अर्थात् इनकी रक्तापूरता दूर की जाय । इनके अन्दर विद्यमान क्षोभ को दूर किया जाय और रक्त को उत्कृष्ट Quality का बनाया जाय ।

(३) शरीर के वृक्कान्तर मलत्याग के स्रोतों को मल परित्याग के लिए उत्तेजित किया जाय।

तीव्र-वृक्क-शोथ

रोगी को शय्यारूढ़ रहना चाहिए। और उसे गरम कपड़ों आदि से गरम रक्खा जाना चाहिए। इसलिए उसे फलालैन के कपड़े में लपेटना चाहिए। शरीर के वृक्कों के समीपवर्ती प्रदेश पर गरम पुल्टिसें बांधनी चाहिएँ। इस प्रकार की पुल्टिसें प्रत्युत्तेजना का बहुत अच्छा साधन हैं। गरम वायु के स्नानों वगैरह से कोई लाभ विशेष नहीं होता है बल्कि कौलैप्स् का खतरा भी रहता है।

पथ्य—शुरु शुरु में भोजन बिल्कुल ही वन्द कर देना चाहिए। बाद में भोजन का नियन्त्रण उसी प्रकार का है जैसा कि ज्वरों के अध्याय में कह आए हैं। कुल द्रव की मात्रा जो पेयों द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो २ पाइण्ट से अधिक नहीं होनी चाहिए। २ पाइण्ट करीबन १। सेर के वरावर होते हैं। शुरु शुरु में दूध नहीं देना चाहिए सिर्फ ग्लूकोज़-द्रव में निम्बू निचोड़ कर पिलाना चाहिए। बाद में जब रोगी की हालत कुछ सुधर जाय अर्थात् ४थे दिन से थोड़ा २ दूध भी प्रारम्भ कर देना चाहिए। मांसरस आदि प्राणीजन्य भोजनों में प्रोटीनों की मात्रा अधिक परिमाण में होती है अतः बिल्कुल नहीं देने चाहिएँ।

औषधें—औषधियाँ निःसहाय होती हैं। ये प्रचलित चाल है कि साधारण स्वेदक मिश्रण दिया जाता है। इस मिश्रण

का उल्लेख ज्वरों के अध्याय में कर आये हैं। यह मिश्रण कोई नुकसान नहीं करता है और साथ ही मूत्र की अम्लीयता को घटाता है। लवणीय (Saline) विरेचकों द्वारा आन्त्रों का अनुलोमन फायदेमन्द होता है।

अगर तीव्र-वृक्क-शोथ में यूरीमिया हो जाय तो इसका आविर्भाव आक्षेपों द्वारा होता है। इसकी चिकित्सा रक्तमोक्षण द्वारा करनी चाहिए। १६ से २० औंस तक रक्त निकाल देना चाहिए और रक्त-मोक्षण के अनन्तर लवणीय घोल (Saline) का शरीर में सूची-प्रवेश देना चाहिए। मॉर्फिया को निःसंकोच दे सकते हैं। क्योंकि इसका विसर्जन आन्त्रों द्वारा होता है वृक्कों द्वारा नहीं। पहिले इसका देना हानिकर समझा जाता था पर उपरोक्त परित्याग वाली युक्ति से स्पष्ट है कि ऐसा समझना भ्रममात्र था।

जब रोगी स्वस्थ हो जाय या स्वस्थता अगर विलम्बित हो जाय तो तब भी पूर्ण स्वस्थता की प्रतीक्षा से पूर्व ही संक्रमण के केन्द्रों (Septic foci) की खोज और उनका निराकरण प्रारम्भ कर देना चाहिए। ये संक्रमण के केन्द्र दाँत, टाँन्सिल वगैरह होते हैं। ऐसा माना जाता है कि इन केन्द्रों से जीवाणुओं की विषें जज़ब हो हो कर शरीर में संचरित होती हैं और वृक्कों को रुग्ण बनाए रखती हैं। सो इसलिए इन केन्द्रों की निवृत्ति रुग्ण वृक्कों की रुग्णता को दूर करने में सहायक होती है।

कुण्ठित वृक्क-शोथ

(Subacute nephritis)

चिकित्सा का लक्ष्य इस रोग में शरीर की सर्वाङ्ग-श्वयथु (Dropsy) को दूर करना है। यही लक्षण इस रोग के लक्षणों में सबसे मुख्य होता है। सो इसी पर चिकित्सा को केन्द्रित करना चाहिए।

रोग की परिचर्या तीव्र वृक्कशोथ वाली ही होती है।

पथ्य—इसमें लवण रहित भोजन दिया जाता है। प्रोटीन की मात्रा उतनी ही होनी चाहिए कि जितनी वृक्क परित्याग कर रहे हों। अधिक मात्रा में प्रोटीनें देने से यूरिआ अधिक बन जाता है जिसे वृक्क विसर्जित नहीं कर सकते हैं। भोजन में नमक नहीं डालना चाहिए। जो लवण पहिले से ही शाकों आदि में उपस्थित होता है उतना ही रहे बाद में बिलकुल न डाला जावे। इसके अतिरिक्त प्रोटीन वाले पदार्थों को भी बड़ी परिमित राशि में सम्मिलित करना चाहिए।

लाइपौयडल नेफ्रोसिज़ में एल्ब्युमिन बहुत निकल रही होती है और रक्त में फैट बहुत इकट्ठी हो रही होती है इस लिए वहां एप्सटीन रचित भोजन बहुत उपयुक्त होता है। एप्सटीन रचित भोजन में प्रोटीनें अधिक मात्रा में होती हैं और वसामय पदार्थ कम मात्रा में होते हैं। इस भोजन का ये लाभ होता है कि रक्त में औस्मोटिक शक्ति बढ़ती है और रक्त का बढ़ा हुआ वसामय पदार्थ भी नहीं बढ़ता है।

प्रतिदिन के पेय द्रव की कुल मात्रा १॥ से २ पाइण्ट तक होनी चाहिए।

औषधियां—कई मूत्रल औषधियां मूत्रल प्रभाव के उत्पन्न करने में (इस रोग में) कारगर नहीं होती हैं। और ऐसी हालतों में यूरिया अकसर कामयाब हो जाता है। (यूरिया के १० से १५ ग्रेन दिन में तीन बार एक सप्ताह तक एक ही बार देने चाहिएं।)

अगर रोगी को पाण्डुता होतो नीचे लिखा नुस्खा ठीक बैठता है।

प्र	पोटाशियम एसिटेट्	ग्रेन १५
	लाइकर फेराई एसिटेट्	बूंदें १५
	लाइकर अमोनिया एसिटेट्	ड्राम २
	सीरप लिमोनिस्	ड्राम १
	एक्वा	मिलाओ १ औंस तक

ऐसी तीन खुराकें लाओ

हिदायतें—१ औंस तक की एक खुराक दिन में तीन वार भोजन के बाद पियो।

इस नुस्खे में लोहे का समास लाइकर फेराई एसिटेट आधार है। ये समास पोटाश और अमोनिया के एसिटेटों के साथ अच्छा मेल रखता है। इसलिए पोटाश और अमोनिया के एसिटेट डाले गए हैं। इसके इलावा पोटाश और अमोनिया के एसिटेट स्वेदल भी है। निम्बु का पानक संशोधक है। स्वाद को रुचिकर और प्रिय बनाता है। चूंकि लोह के सब मिश्रण भोजन

के बाद लिए जाते हैं इसलिए इस मिश्रण को भी भोजनान्त में पीना चाहिए। खाली पेट दिए हुए लोहे के समास आमाशय में जाकर क्षोभ करते हैं।

मलबन्ध के अध्याय में बताए हुए तीव्र विरेचक जैसे पल्व जैलप को, पिल्युला कोलोसिन्थ आदि भी शरीर से जलाधिक्य को दूर करके थोड़ा बहुत फायदा पहुंचाते हैं। इसलिए इनका भी सामयिक प्रयोग होता है।

अगर मूत्रल और विरेचकों तथा भोजनादि सम्बन्धी उपचार करने के बाद भी श्वयथु बनी रहे तो फिर जलोदर, जलवक्षस् (Hydrothorax) आदि का निराकरण साधारण शल्य कर्मों द्वारा कर देना चाहिए। इन साधारण शल्यकर्मों का करना भी औषध-चिकित्सक (Physician) के चिकित्सा-क्षेत्र में परिगणित होता है। यद्यपि Septic infection का डर रहता है पर अगर औषधादि की चिकित्सा रोगी की दशा न सुधार रही हो तो फिर इस शल्य कर्म को प्रयोग में लाने से न हिचकिचाना चाहिए। इस शल्य कर्म से रोगी को सामयिक तौर पर चामत्कारिक लाभ होता है।

चिरकालीन वृक्क-शोथ

(Cirrhotic Kidney, Azotaemic nephritis)

इस वृक्कशोथ में चिकित्सा पूर्वोक्त वृक्क-शोथों की अपेक्षा और भी अधिक पंगु है। केवल मात्र लाक्षणिक चिकित्सा का ही सहारा लेना पड़ता है।

साधारण परिचर्या—रोगी को सर्दी से बचाना चाहिए इस लिए अगर धन का प्रतिबन्ध न हो तो गरम आबोहवा वाले देश में प्रवास कर जाना चाहिए। पहिनने के कपड़ों के बारे में सावधानी रखनी चाहिए। गफलत से सर्दी लगने का अन्देशा होता है। अगर रोगी प्रतिदिन का साधारण कार्य करता हो तो उसे ताकीद कर दी जानी चाहिए कि कोई श्रम या चिन्तायुक्त कार्य उसके लिए हानिकर है। उसका प्रतिदिन का कार्य ऐसा होना चाहिए कि कुछ भी श्रान्ति न हो।

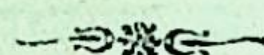
पथ्य—रोगी का भोजन रोगी व्यक्ति के अनुसार होना चाहिए। उसे भोजन की अति नहीं करनी चाहिए। भोजन के विषय में संयमी भी होना चाहिए। रोगी रक्त के यूरिया को मूत्र द्वारा विसर्जित करने में असमर्थ होता है इसलिए उस का भोजन जहां तक हो सके उसकी असमर्थता के अनुसार कम प्रोटीनों वाला होना चाहिए। और इसलिए मांस आदि भोजन में प्रतिषिद्ध होवें और रोगी वनस्पति-जन्य भोजनों का ही आहार करे। यदि रोगी मांस का पूर्ण परित्याग करने में असहाय हो तो उसे लाल की बजाय सफेद मांस खाना चाहिए। सफेद मांस में कम प्रोटीनें होती हैं। और मांस को उबाल कर खाना भून के खाने से अच्छा है। क्योंकि उबालने से बहुत से ऐसे पदार्थ जिन्हें Extractives कहा जाता है निकल जाते हैं। मांस रस या शोरबे नहीं खाने चाहिएँ। सो सारांश यह है कि भोजन उच्च-दबाव वाले रोगी की तरह का होना चाहिए।

औषधियाँ—प्रतिदिन का औषध सेवन यही है कि

रोगी एक सुख विरेचक लेता रहे। शेष औषधियाँ समय समय पर जब कि रोग के दुख देने वाले लक्षण प्रगट होवें तो उनको दूर करने के लिए लेनी पड़ती हैं। उदाहरणार्थ आमाशय-शोथ के लिए बिस्मथ का प्रयोग जैसा कि आमाशय-शोथ में बताया जा चुका है करना चाहिए। अगर सिर दर्द होती हो तो कोई वेदना-हर या निर्वेदक दवाई लेनी चाहिए। यदि हृदय का कार्यावरोध होगया हो तो डिजिटेलिस् का प्रयोग करना पड़ेगा।

यदि इस चिरकालीन वृक्क-शोथ में उपद्रव के तौर पर यूरीमिया हो जाय तो फिर यही समझना चाहिए कि रोगी का अन्तकाल समीप ही है। और कुछ विशेष नहीं किया जा सकता है। रोगी को गरम स्नानों आदि से तंग नहीं करना चाहिए। पसीने के लिए पिलोकार्पीन देनी अच्छी तो है पर इससे फुफ्फुसों का श्वयथु होजाने का भय होता है। आक्षेपों का निराकरण मॉर्फिया और रक्त-मोक्षण द्वारा करना चाहिए। और अगर प्रलाप और बेचैनी (Restlessness) हों तो हायोसीन हाइड्रो-ब्रोमाइड का १/१०० ग्रेन त्वचाधो-सूची-वेध द्वारा देना चाहिए। सरांश यह है कि चिकित्सक का मुख्य कर्तव्य चिरकालीन यूरीमिया में रोगी को येन केन प्रकारेण आराम पहुँचाने का होता है। और उसकी मृत्यु का मार्ग दुःख-रहित बनाने का होता है। रोगी का 'इलाज हो जायगा ऐसा ख्याल करना तो निर्विवाद तिनके का सहारा लेना होता है।

तेरहवाँ उद्बोध



रक्त रोग

पाण्डुता और रक्ताच्छकों का प्रयोग



क्ताच्छक शब्द Haematinics के लिए प्रयुक्त किया गया है। Drugs which improve the quality of blood are called as Haematinics.। संस्कृत में अस्रनुत्, अस्रजित्, शोणितवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, रक्तशोधक, रक्तदोषहर, इत्यादि बहुत से नाम हैं। पर इनमें से एक भी नाम Quality को improve करने का द्योतक नहीं है। इसीलिए मैंने रक्ताच्छक नाम घड़ लिया। रक्त को जो अच्छा करे सो रक्ताच्छक। इस प्रकार रक्ताच्छक शब्द Haematinic शब्द का पर्यायवाची हुआ। इस समय मुझे इस बहस में नहीं पड़ना है कि खूनशफ़ा या रक्तशोधक द्रव्य क्या रक्ताच्छक नहीं है इत्यादि। इस विषय की चर्चा किसी अन्य पुस्तक में करूंगा।

पाण्डुता को दूर करने के दो तरीके हैं। एक तो यह कि रक्त के होते हुए नाश से इसे बचाया जाय। दूसरे हुए २ नाश को पूरा करने के लिए रक्त की वृद्धि की जाय।

परिचर्या—रोगी को शय्यारूढ़ करें। रोगी के लिए शय्या का कारावास लाभप्रद होता है। एक तो यह रोगी को श्वास काठिन्य से बचाता है। क्योंकि जब रोगी चलता फिरता हो तो उसे अधिक ओषजन आवश्यक होती है। रक्त इस ओषजन की मांग को रक्त के लोहिताणुओं की कमी के कारण पूरा करने में असमर्थ होता है। इसीलिए श्वास काठिन्य होजाता है। शय्या कारावास इस शिकायत को बहुत कुछ हद तक या अगर शिकायत मामूली हो तो बिल्कुल दूर कर देता है। दूसरे इस कारावास का एक यह भी लाभ होता है कि रक्त का नाश भी कम हो जाता है। मैं इसका युक्तियुक्त उत्तर नहीं दे सकता हूं कि ये रक्तनाश विश्राम की दशा में क्यों कम होता है। संभवतः निम्न उत्तर उपयुक्त हो सकता है। रक्त के लोहिताणु कार्य करके जीर्ण (पुराने) हो जाते हैं और इसलिए अपना जीवन पूर्ण कर चुकने पर रेटिकुलोएण्डोथीलियल टिश्शू (रक्तान्तक तन्तुओं) वाले अन्तरावयवों जैसे तिल्ली आदि से, नष्ट कर दिये जाते हैं। यदि इनके कार्य को घटा दिया जायगा तो इनका जीर्ण होना भी जल्दी नहीं होगा और इसलिए रक्तान्तक (रेटिकुलोएण्डोथीलियल) प्रपंच भी रक्त का कम नाश करेगा।

रोगी को धूप और ताजी हवा का भी जहाँ तक हो सके खूब सेवन कराना चाहिए। यदि किसी प्रकार खून का नाश हो रहा हो तो उसे भी रोकना चाहिए। (ये खून का नाश और अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।) इस खून के नाश से मतलब है जैसे रक्तार्शस द्वारा खून का शरीर से नष्ट होना, बार बार की नकसीर

के फूटने से रक्त का नाश होना, नाना प्रकार के रक्तस्रावों से रक्त का जो नाश है उससे तात्पर्य है।

शरीर में नाना स्थलों में पाए जाने वाले संक्रमण केन्द्रों (Septic foci) को जहाँ तक हो सके दूर कर देना चाहिए। ये केन्द्र, खराब हुए २ दाँतों में, कान में, नाक के गह्वरों में, आन्त्र-परिशिष्ट में, पित्ताशय में और ऐसे ही कुछ अन्य स्थानों में पाए जाते हैं। इन सेप्टिक-केन्द्रों को रक्त की रक्षार्थ जहाँ तक हो सके दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पथ्य—पथ्य से मैंने सब जगह भोजन पथ्य का ग्रहण किया है। भोजन रोगी की पाचक शक्ति के अनुसार होना चाहिए। खास, लोहे वाले भोजन देने भी आवश्यक नहीं हैं (जैसे कि पालक आदि)। क्योंकि हम लोहे को अगर देना भी अभीष्ट हो तो बड़ी आसानी से दवाइयों द्वारा दे सकते हैं। इससे मेरा ये मतलब नहीं कि पालक आदि भोजन बन्द किए जाएँ पर मेरा मतलब तो इतना ही है कि इन लोह-वाले भोजनों को खामखा अत्यधिक मात्रा में रोगी की रुचि के विरुद्ध, वेजा तौर पर न घुसेड़ा या ठूंसा जाय।

औषधियाँ—पाण्डुता मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं। एक स्पष्ट तौर पर परकारणाश्रयी और दूसरे अज्ञात कारण वाली या स्वकारणाश्रयी। परकारणाश्रयी जैसे अर्शस् की पाण्डुता, मलेरिया, कालाज़ार, घातक अर्बुद आदि की। पर+आश्रित होने वाली पाण्डुता; इसे अंग्रेज़ी में Secondary

anaemia कहा जाता है। सब सैकेण्डेरी एनीमियों में लोह प्रयुक्त करना चाहिए। इसके प्रयोग करने के लिए भिन्न २ योग वर्ते जाते हैं।

(i) अनैन्द्रियक पदार्थ—

(क) लोहस् समास—गन्धित, कार्बनित, नैलिद (Iodides) और प्रस्फुरित प्रयुक्त होते हैं। पिल्युला फेराई की ५ ग्रेन की गोली में १ ग्रेन लोहस् गन्धित होता है। फेराई कार्ब सेकेरिस में जिसकी मात्रा १० से ३० ग्रेन है, लोहे का कार्बनित होता है। मिस्ट फेराई को० में भी जिसकी मात्रा आधा से एक औंस है, लोहे का कार्बनित होता है। सीरप फेराई आयोडाइड् में (मात्रा आधा से एक ड्राम) लोहे का नैलिद होता है। सीरप फेराई फास्फेटिस् और सीरप फेराई फौस्फेटिस कम कुनीन एट् स्ट्रिकनीन (यानि ईस्टन सीरप में लोहे का प्रस्फुरित होता है।) इन दोनों की मात्रा आधा से एक ड्राम है।

(ख) पर्पटी रूप लोहे के समास निम्न तीन हैं—

लोहे का टार्टरेट, लोहे और असोनिया का सिट्रेट तथा लोहे और कुनीन का सिट्रेट। प्रत्येक की मात्रा ५ से १० ग्रेन है।

(ग) लोहिक समास—लोहिक समासों के निम्न योग मुख्य रूप से प्रयुक्त किए जाते हैं।

टिंचर फेराई परक्लोर और लाइकर फेराई एसिटेटिस् इनमें से प्रत्येक की मात्रा ५ से १५ बूंदें हैं।

(ii) ऐन्द्रियक समास—लोहे के ऐन्द्रियक समास, एल्ब्युमिनेट, पेप्टोनेट, न्यूक्लिनेट इत्यादि हैं। ये समास पेटेन्ट दवाइयों

के तौर पर ही प्रयुक्त किए जाते हैं। ब्रिटिश फार्मेकोपिया में इन्हें स्थान नहीं दिया गया है।

लोहे के समासों को प्रयुक्त करते हुए निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिए।

(१) इन्हें हमेशा भोजन के बाद देना चाहिए। खाली पेट दिये जाने पर ये क्षोभ (Irritation) करते हैं।

(२) ये विट्बन्धी होते हैं। इसलिए चिकित्सकों को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि कहीं रोगी मलबन्ध की शिकायत न करे। ऐसी अवस्था में उसकी मलबन्ध की शिकायत दूर कर देनी चाहिए।

(३) इन्हें प्रारम्भ में पूर्ण मात्राओं में देना चाहिए। पूर्ण मात्राओं से एक और भी लाभ होता है। लोहे के समासों में ताम्र की अशुद्धता (Impurity) होती है। पूर्ण मात्राओं में इस तरह ताम्र की भी पर्याप्त मात्रा रोगी को मिल जाती है। ताम्र भी रक्ताच्छक है।

(४) लोहस् समास सब से कम क्षोभजनक (Irritating) हैं। पर्पटी रूप उनसे अधिक पर लोहिक समासों से कम। और लोहिक समास सबसे अधिक क्षोभ-जनक हैं।

(५) पर्पटी रूप लोहे के समास पानी में शीघ्र घुलन शील हैं अतः मिश्रणों में बहुत अच्छे रहते हैं।

(६) कहा जाता है कि लोहे के ऐन्द्रियक समास सब से कम क्षोभजनक हैं। पर असल में महास्रोतस् से जज़ब होते

हुए तो ये अनैन्द्रियक समासों के रूप में ही जज़्ब होते हैं तो फिर कैसे कम क्षोभजनक हैं, ये बात समझ में नहीं आती है। अतः कई सज्जनों का उपरोक्त दावा युक्ति युक्त नहीं है। और परीक्षणों पर तो आश्रित है ही नहीं।

बुद्बुदायमान योग

प्र फेराइ एट् अमोनिया साइट्रास् ग्रेन १०
सिट्रिकाम्ल (Citric acid) ग्रेन १५
पानक लिमोनिस् ड्राम १
जल मिलाओ १ औंस तक
यह नम्बर एक भाग हुआ।

प्र पोटाशियम बाईकार्ब ग्रेन २०
पानी मिलाओ १ औंस
यह नम्बर दूसरा भाग हुआ।

हिदायतें—पहिले और दूसरे दोनों भागों को उपरोक्त बराबर परिमाणों में (१ औंस के) मिलाओ और जब बुलबुले अभी निकल ही रहे हों पीजाओ।

ये बुद्बुदायमान मिश्रण अन्य सारे मिश्रणों से अच्छा रहता है। इस नुस्खे में फेराइ एट् अमोनियम सिट्रेट् आधार है। सिट्रिक अम्ल और पोटाशियम बाईकार्ब बुद्बुद पैदा करने के लिए डाले गए हैं। सीरप लिमोनिस को सुवासित सुस्वादु और रुचिकर बनाने के लिए डाला गया है।

कब्ज़-कुशा लोहे का योग—

प्र फेराइ सल्फ ग्रेन ४

मैग सल्फ — ड्राम आधा
गन्धकाम्ल हलका — बूंदें ५
आर्द्रक मद्यसार — बूंदें २०
क्वासिया का क्वाथ मिलाओ १ औंस तक।
ऐसी ३ खुराकें।

हिदायतें—एक औंस पाव भर पानी में हलका करके भोजनोपरान्त दिन में ३ वार पियें।

इस नुस्खे में फेराइ सल्फ आधार है। मैगसल्फ लोहे की मलबंधता को उदासीन करने के लिए डाला गया है इसलिए संशोधक है। गन्धकाम्ल हलका, घोल को स्वच्छ बनाने के लिए डाला गया है। टिंचर जिंजर उद्वेष्टनों को दूर करता है अतः यह भी संशोधक है। क्वाशिया एक तिक्त (Bitter) पदार्थ है जो क्वाथ रूप में लोहे का संवाही बन सकता है क्योंकि इसमें टैनीन नहीं होती है। जब लोगों को क्लोरोसिस् (हलीमक) बहुत हुआ करता था तो इस योग का प्रयोग बहुत प्रचलित था।

उपरोक्त लोह के योग उदाहरणार्थ दे दिए हैं पर चिकित्सार्थ इतने अन्य पेटेन्ट तथा बने बनाए (ब्रिटिश फार्मेकोपिया के) योग मिलते हैं कि व्यवहार में नुस्खे लिखने की जरूरत ही नहीं पड़ती है।

स्वकारणी या प्रारम्भिक पाण्डुता में तथा ल्यूकीमिया रोगों में रोगी की परिचर्या पूर्वोक्त बताए प्रकार से ही करनी चाहिए। औषधियाँ कुछ विशेष लाभकर नहीं होती हैं। पर आर्सनिक (सोमल) को ल्यूकीमिया में अकसर देते हैं।

आर्सनिक के निम्नलिखित दो द्रव-योग प्रयुक्त किए जाते हैं। एक क्षारीय है तथा दूसरा अम्लीय है। लाइकर आर्सेनिकेलिस् (फाउलर का घोल) क्षारीय द्रवयोग है। और लाइकर आर्से-निसाई हाइड्रोक्लोरिकस् अम्लीय द्रवयोग है। इनके क्षारीय और अम्लीय होने का अन्य योगों के निर्माण में बड़ा ख्याल रखना चाहिए। क्योंकि क्षार क्षारों के साथ मिल सकते हैं और अम्ल अम्लों के साथ। क्षार और अम्ल परस्पर विरोधी होते हैं अतः योगों में एकत्र मिलाकर प्रयुक्त नहीं किए जा सकते हैं। इनमें से प्रत्येक की मात्रा २ से ८ बूंदें हैं। यदि आर्सीनियस् एसिड् देना हो तो इसे वटी के रूप में देना चाहिए। इसकी मात्रा १/६४ से १/१६ ग्रेन है।

यदि किसी रोगी को आर्सेनिक और लोहा दोनों एक ही मिश्रण में मिला कर देने हों तो निम्न योग देना चाहिए—

प्र टिंचर फेराइ परक्लोर बूंदे १०
लाइकर आर्सेनिसाई हाइड्रोक्लोर बूंदे ३
गिलसरीन बूंदें १५
एक्वा मेन्थेपिप मिलाओ १ औंस तक।

ऐसी तीन खुराकें।

हिदायतें—एक खुराक दिन में तीन वार भोजन के वाद लेनी चाहिए।

इस नुस्खे में आर्सेनिक का अम्लीय द्रव-योग डाला गया है क्योंकि टिंचर फेराई पर-क्लोर अम्ल है। गिलसरीन लोहे

के ग्राही स्वाद को छिपाने के लिए है। पुदीने का पानी सुवासक संवाही है।

वटी—
एसिडाई आर्सीनियोसाई ग्रेन १/६०
पिल्युला फेराई ग्रेन ४
वटी बनाओ। ऐसी १२ बटियाँ लाओ।

हिदायतें—दिन में १ वटी तीन बार भोजनों के बाद खानी चाहिए।

यदि आमाशय में शोथ हो या आर्सेनिक देने से आमाशय में बड़ा क्षोभ होता हो तो आर्सेनिक को त्वचाधोसूचीवेध द्वारा देना चाहिए। इसके लिए लाइकर सोडाइ आर्सेनेटिस की ५ बूंदे त्वचाधोसूचीवेध द्वारा दी जाती हैं।

आर्सेनिक के बहुत से ऐन्द्रियक समास भी प्राप्त होते हैं। इनमें आर्सेनिक कार्बन के अणुओं के साथ मिला हुआ होने से कम विषमय प्रभाव रखता है। ऐसे समासों के उदाहरण साल्वर्सन, सोडियम कैकोडाइलेट आदि हैं। इन्हें क्रमशः अन्तःशिरा सूचीवेध तथा त्वचाधोसूचीवेध द्वारा दिया जाता है। पाण्डुता के लिए इनका प्रयोग उपादेय नहीं है। पर हाँ प्रोटोजुआ के संक्रमणों में इनका प्रयोग अनुपम उपादेयता रखता है। मैंने अपनी फिरंग नामक पुस्तक में लिख दिया है कि न्युओसाल्वर्सन शिरान्तःसूचीवेध से फिरंग रोग को दूर करने के लिए किस प्रकार प्रयुक्त करनी चाहिए।

एडिसोनियन पाण्डु या घातक पाण्डु (Pernicious anaemia) और इस श्रेणी के अन्य वृहदाकार रक्ताणुओं वाले

पाण्डु रोगों में यकृत् का प्रयोग बहुत उत्तम सिद्ध हुआ है। इस दृष्टि से यकृत् बहुत उत्तम रक्ताच्छक है। इसमें एक सनत्रजनी (Nitrogenous) पदार्थ होता है जो मेगेलोब्लास्टों को पकाकर नौर्मोब्लास्ट बनाने में आवश्यक है। यकृत् अधकचरा पकाकर प्रतिदिन आधा पौंड या पाव की मात्रा में दिया जाता है। या यकृतों के सार खींचे जाते हैं और फिर घनीभूत करके मार्केटों में बेचे जाते हैं। कौम्पोलौन, हेपेटेक्स इत्यादि इसी प्रकार के पदार्थ हैं। यदि रोगी को यकृत् खाना नामंजूर हो तो ये पदार्थ शरीर में प्रविष्ट किए जाते हैं।

सूखी हुई आमाशय की अन्तःकला में भी एक पदार्थ होता है जो इन्ट्रिंजिक फैक्टर कहलाता है। इसे किन वृहदाकारी रक्ताणुओं वाले पाण्डु रोगों में देना चाहिए इसकी विवेचना किसी अन्य बड़ी चिकित्सा की पुस्तक में पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक का इतना क्षेत्र नहीं कि मैं इस विषय पर और विचार करूँ। मार्माइट भी इस श्रेणी के (मेगेलोसिटिक पाण्डुओं की श्रेणी के) कई पाण्डुओं जैसे स्प्रू, ट्रोपिकल एनीमिया, ईडियोपैथिक स्टिएटोर्हिया में दिया जाता है। इस पर भी यहाँ और अधिक विचार नहीं किया जा सकता है। पाठकों को यहाँ ये बता देना असंगत न होगा कि इस सम्बन्ध में खोज करने वाले चिकित्सा के अन्वेषकों को (मिनोट और कासल को) जगद्विख्यात नोबेल पारितोषक मिल चुका है।

कई उग्र पाण्डु के रोगियों में और सद्योजात अत्यधिक रक्तस्राव में रक्तदान (Transfusin of blord) जरूरी होता है।

दबाव की उच्चता तथा रक्तवाहिनी प्रसारक

वृक्क रोगों के बाद जो रक्त के दबाव की उच्चता हो जाती है उसे अपरज अर्थात् वृक्करोग रूपी अपर कारणजन्य समझना चाहिए और इसलिए उसकी चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। उसकी चिकित्सा के लिए तो वृक्करोग की चिकित्सा ही अपेक्ष होती है। पर एक दूसरी प्रकार दबाव की उच्चता भी होती है जो कि अनपरज या अनन्यज (बिना किसी दूसरे कारण के) हुई हुई होती है। इसकी चिकित्सा अकसर सब चिकित्सक बड़े प्रयत्न से करते हैं। इस उच्चता का कारण हमें ज्ञात नहीं है और कारणज्ञान के अभाव में किस तरह इसका असली इलाज होना चाहिए हम नहीं कह सकते हैं। पर तो भी अनेकों प्रचलित उपायों से उच्चता को कस रक्खा जाता है। स्वस्थ पुरुषों की रक्त दबाव की उच्चता तक घटाकर लाने को कोशिश की जाती है। अब इन्हीं उपायों का वर्णन प्रारम्भ किया जायगा।

इन उपायों के दो मुख्य लक्ष्य होते हैं—एक तो यह कि रोगी कोई ऐसा कार्य न करे जिससे यकायक बढ़ा हुआ दबाव और बढ़ जाए और इससे रक्तदबाव रोग का कोई उपद्रव या उत्पात प्रगट हो जावे। जैसे कि किसी रक्तवाहिनी का फट जाना। जहाँ हम ये नहीं चाहते कि बढ़ा दबाव एकदम बढ़े वहाँ हम ये भी नहीं चाहते हैं कि बढ़ा हुआ दबाव हमेशा बढ़ा ही रहे। इसलिए वो सब विधान या कार्य जो रोगी के बढ़े हुए रक्त दबाव को बढ़ा हुआ ही रखने वाले हों प्रतिषिद्ध होने चाहिएँ। इस प्रकार दो प्रकार के प्रतिषेध होने चाहिएँ। एक तो वो कार्य जो दबाव

को यकायक ऊँचा कर देने वाले हों प्रतिषिद्ध होवें। दूसरे वो कार्य जो ऊँचे दवाव को ऊँचाई पर ही रखने वाले हों प्रतिषिद्ध होने चाहिएँ।

हमारा दूसरा लक्ष्य यह होता है कि यकृत, आन्त्र, त्वचा, वृक्क प्रभृति शरीरावयवों से विसर्जन जितना हो सके होता रहना चाहिए।

साधारण परिचर्या—रोगी को निरामिषभोजी होना चाहिए। निरामिष से तात्पर्य वनस्पतिजन्य पदार्थोंतथा दुग्ध के सेवन से है। पर ऐसा प्रतिबन्ध करने से कई रोगी जो मांस खाने के आदि होते हैं तंग आजाते हैं। रोगी को न चिन्ताएँ करनी चाहिएँ और न क्षान्ति व क्लान्तिकर व्यापार ही करने चाहिएँ। कम से कम ६ घण्टे प्रतिदिन शय्यारूढ़ रहना चाहिए। सव से अच्छी हलका व्यायाम चलना फिरना है। चलना फिरना भी पहाड़ों का नहीं, परन्तु मैदानों का। रोगी को क्रोधावेग नहीं करने चाहिएँ और न एक दम किसी भारी बोझ को उठाना चाहिए। सिर को नीचे करके किए जाने वाले हलके व्यायाम भी नहीं करने चाहिएँ। इनसे मस्तिष्क रक्तस्राव होने का डर होता है।

रोगी को चिन्ता रहित, शान्त चित्त और प्रसन्न मन होना चाहिए। ठण्डे पानी से स्नान नहीं करना चाहिए। शरीर को गरम रखना चाहिए। ठण्ड से हमेशा शरीर का बचाव रखना चाहिए। अनुष्णाशीत या कोष्ण जलों से स्नान करना चाहिए। और ठण्ड से बचाव रखने के लिए शरीर पर्याप्त गर्मी वाले वस्त्रों से आवेष्टित होना चाहिए।

भोजन—रोगी को उचित मात्रा में ही आहार करना चाहिए। अधिक भोजन हानिकर होता है। कहने का तात्पर्य ये है कि रोगी को मिताहारी होना चाहिए। रोगी का भोजन शाकादि वानस्पतिक पदार्थों वाला होना चाहिए। मांस रस तथा मांस भोजन हानिकारक होते हैं। अगर मांस भोजन करना ही हो तो उबला हुआ मांस भुने हुए मांस से कम हानिकर होता है। उपवास द्वारा भी रक्त का दबाव घटाया जा सकता है पर इससे रोगी का स्वास्थ्य भी गिरता है। इसलिए इस उपाय का प्रयोग अनभिप्रेत है।

मद्यों का जहाँ तक हो सके रोगी को सेवन नहीं करना चाहिए। यद्यपि मद्य रक्त वाहिनीप्रसारक होते हैं पर अनुभव कहता है कि मद्यों का प्रयोग रक्तदबाव के रोगियों में हानिकारक है। यदि कोई रोगी मद्यसेवी हो और मद्य का सर्वथा त्याग न कर सकता हो तो उसे जहाँ तक हो सके मद्यपान छोड़ देना चाहिए। यदि ये कहा जाय कि मद्यपान रक्त की मात्रा(Volume) को बढ़ा देते हैं और इसलिए हानिकारक होते हैं तो ऐसा तो पानी आदि पेयों के पान से भी होता है पर वे हानिकारक होने की बजाय लाभकर होते हैं।

जबकि दबाव के सद्योपात (Crises ये अकसर रक्त-दबाव के रोगियों में पाए जाते हैं। इनमें कई बार तो रक्त का दबाव एकदम बढ़ जाता है और कई बार एकदम गिर जाता है।) हों तो ऐसी हालतों में भोजन केवल दूध ही होना चाहिए।

अर्थात् Crises के दौरों में रोगी को एकमात्र दुग्धाहारी होना चाहिए।

औषध विवेचना—दो प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया जाता है। एक तो वो कि जो रक्तवाहिनियों की प्रसारक होती हैं। दूसरी वो जो आन्त्रादि शरीर के विसर्जक स्रोतों से रक्त दबाव को उच्च करने वाले शारीरिक मलों का परित्याग कराती हैं।

प्रथम प्रकार की औषधियाँ निम्न हैं। इनका प्रयोग अस्थायी तौर पर कुछ देर के लिए होता है। ये रक्तवाहिनी-प्रसारक होती हैं। इनमें मुख्य एमाइल नाइट्राइट् है। ये औषधि शीशे की छोटी २ ट्यूबों में बन्द मिलती है। इन ट्यूबों को रुमाल में पकड़ कर तोड़ लेते हैं। इसके बाद द्रव औषध रुमाल में जज़्ब हो जाती है और उड़ती है। इस उड़ती हुई औषध को सूंघा जाता है। इस प्रकार सूंघने से श्वास द्वारा इस औषध का शरीर में प्रवेश होता है। जब रक्तदबाव की उच्चता वाले रोगी में हृद्-प्रदेश के सन्मुख दर्द हो तो तब इसका प्रयोग उस दर्द को तत्काल प्रशान्त कर देता है। दूसरी औषध नाइट्रोग्लिसरीन है। इसकी गोलियाँ होती हैं। और इन गोलियों में इसकी १/२०० से १/५० ग्रेन तक की मात्रा होती है। अगर इस औषध की थोड़ी मात्रा देनी हो तो १/२०० ग्रेन वाली गोली देनी चाहिए और अगर अधिक मात्रा देनी हो तो १/५० ग्रेन वाली। इसका असर भी शीघ्र ही होता है। तीसरी औषध एरिथ्रौल टेट्रानाइट्रेट है। इसकी मात्रा आधी से एक ग्रेन है। इसे भी गोली के रूप में दिया जाता

है। इसका शनैः और ज्यादा देर रहने वाला असर होता है। ट्राइनाइट्रो-ग्लिसरीन के घोल को भी जिसे कि लाइकर ट्राइनाइट्राई के नाम से पुकारा जाता है अकसर प्रयोग में लाते हैं। इसका प्रभाव प्रगट भी शीघ्र होता है और विलुप्त भी शीघ्र ही होता है। इन सब नाइट्राइट् समासों को अकेला ही बर्तना चाहिए। नुस्खों में अन्य औषधियों के साथ मिलाकर नहीं बर्तना चाहिए। ये अपने आप में अस्थायी होते हैं। अर्थात् इनके घोलों को अगर पड़ा रहने दिया जाय तो ये अन्य समासों में बदल जाते हैं। अतः इनके घोल जब भी रोगी को देने हों तो ताज़े बनाकर दिए जाने चाहिएँ और अन्य औषधियों के साथ नहीं मिलाने चाहिएँ।

अकसर कई चिकित्सक इस रोग में पोटाशियम आयोडाइड् को भी देते हैं। इसका प्रयोग केवल मात्र अनुभवाश्रयी है। हमें नहीं मालूम कि इसका असर रक्त दबाव पर होता भी है या नहीं और अगर होता है तो किस तरह होता है? चिकित्सक इसे इसलिए प्रयुक्त करते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि इसका प्रयोग रोगियों के लिए लाभकर होता है। हाँ अगर रक्त दबाव की उच्चता किसी फिरंग रोग सम्बन्धी कारण से हो तो ज़रूर इसका प्रयोग उपादेय है।

ऊपर बताया जा चुका है कि रक्त दबाव को दूर करने का एक ये भी तरीका है कि शरीर से रक्त दबाव को ज्यादा करने वाले मलों को दूर किया जाय। इसके लिए विरेचक जैसे कि पारद के समास (कैलोमल) और मैग्नेशियम सल्फेट आदि दिए जाते हैं। पारद को, कैलोमल, ब्लूपिल, ग्रे पाउडर इत्यादि

के रूप में दिया जाता है। कैलोमल को आधे ग्रेन से १ ग्रेन की मात्राओं में देना चाहिए। इससे बड़ी मात्राओं में इसका प्रयोग करना इस रोग में निरर्थक होता है। ये मात्राएँ बहुत काफी होती है। इसे हफ़्ते में सिर्फ एक बार देना चाहिए। कई लोग इससे भी छोटी मात्राओं में जैसे कि १/६ ग्रेन प्रतिदिन देते हैं। मैग्नेशियम सल्फेट को सवेरे उठते ही गर्म पानी के साथ देना चाहिए। इसकी मात्रा इतनी ही होनी चाहिए कि पुरीष पतली हो जाय। इससे अधिक नहीं। इसका देना प्रतिदिन के रक्त-मोक्षण का सा प्रभाव दिखाता है। क्योंकि इससे रोगी के रक्त की मात्रा कम हो जाती है। तो रक्त दबाव को काबू में लाने के मुख्य उपाय वानस्पतिक भोजन, मैग्नेशियम सल्फेट और कैलोमल का प्रयोग हैं। बाकी बातें तो इस चिकित्सा की सहायक मात्र होती हैं।

इसके इलावा ल्युमिनॉल और ब्रोमाइड् भी रक्त दबाव में लाभकर होते हैं। क्योंकि ये प्रशामक होते हैं। वातसंस्थान की उत्तेजना को दूर करते हैं और इस प्रकार रक्त दबाव को कुछ कम करने में सहायक होते हैं।

भौतिक चिकित्सा—रक्त दबाव को कम करने में भौतिक चिकित्सा भी कुछ भाग लेती है। मर्दन, स्नान, व्यायाम, उष्णता इत्यादि द्वारा भी रक्त दबाव घटता है। ये उपाय त्वचादि की रक्तवाहिनियों को विस्तृत करने वाले हैं। आबोहवा का असर भी रोगी पर होता है। और इसलिए रोगी को थोड़ी ऊंचाई वाले (समुद्र से) प्रदेशों में निवास करना चाहिए।

पर्वत-निवास या उत्तेजक जलवायु वाले प्रदेशों में रहने से रोगी को नुकसान होता है। उत्तेजक जलवायु से मतलब Bracing Climate का है। यदि रोगी किसी स्पा (Spa) में जाकर रहे तो बहुत अच्छा होता है। वहाँ पर Spa के नियम और उनका आवश्यक पालन रोगी के लिए लाभप्रद होते हैं।

रक्तस्राव तथा रक्तास्थापक

चिकित्सा के तीन लक्ष्य हैं—

(१) स्रवित होते हुए रक्त को रोकना। (क) रक्त-वाहिनियों का संकोच करके। (ख) रक्त के छिछड़े (Clots) बनाकर।

(२) रक्त दबाव को घटाना।

(३) रक्तस्राव से उत्पन्न हुए २ लक्षणों को दूर करना (जैसे कि Circulatory failure इत्यादि।)

परिचर्या—विश्राम, मानसिक तथा शारीरिक विश्राम अत्यन्त आवश्यक हैं।

रोगी को शय्यारूढ़ रक्खें। और स्थान को तथा रोगी को शीत रक्खें। सिर को नीचा कर दें (परन्तु मस्तिष्क के रक्त-स्राव में सिर नीचा नहीं किया जाता है।)। रोगी के रक्तस्राव होते हुए अंग पर बर्फ का थैला लगाना चाहिए। संभवतः खून रोकने में ये थैला कारगर नहीं होता है पर हां रोगी को इससे चैन होता है और उसके सम्बन्धियों तथा सहानुभूति प्रदर्शकों पर इस प्रक्रिया का अच्छा प्रभाव पड़ता है। यदि Syncope

ज़ाहर होने लगे तो शय्या की पवान्दी (या पेरू) ऊपर उठा देना चाहिए। और हाथ पांवों पर पट्टियाँ यांध देनी चाहिएँ।

पथ्य—तीव्र रक्तस्राव वाले रोगियों में भोजन छोटी २ मात्राओं में दिया जाना चाहिए। और ठण्डा होना चाहिए। यदि रक्तस्राव आमाशय पक्वाशय व आन्त्रों से हो रहा हो तो ४८ घंटे तक उपवास कराना चाहिए। सिर्फ पानी के (पानी वर्फ मिला न होवे) छोटे २ घूंट ही पिलाने चाहिएँ। सर्वसाधारण रोगियों में रक्तस्राव के बाद की प्यास को सुबह शाम नार्मल सैलाइन के एक पाइण्ट का गुद-प्रवेश देकर बुझाना चाहिए।

औषधियाँ—रक्तस्रावों में मौर्फिया को बहुत प्रयुक्त किया जाता है। इसके प्रयोग का उद्देश्य रोगी को प्रशान्त करना होता है। उसे मानसिक तथा शारीरिक शान्ति प्राप्त करानी होती है। इसे त्वचाधो-सूचीवेध द्वारा दिया जाता है। यदि रक्त-वमन यकृत् की सौत्रिक वृद्धि के कारण हुआ हो तो तब इसे नहीं देना चाहिए। जब रक्तष्ठीवन बहुत अधिक हो रहा हो तो तब भी इसे बहुत सावधानी से प्रयुक्त करना चाहिए। थोड़े रक्त-ष्ठीवन में देना लाभकर होता है पर बहुत मात्रा में होने वाले रक्तष्ठीवन में मौर्फिया हानिकर होता है। इसके देने से श्वासकेन्द्र प्रभावित होता है जिसका परिणाम ये होता है कि श्वास-प्रणालियों से स्रवित रक्त का बहिर्गम नहीं होता और फुफ्फुसों से स्रवित हुआ रक्त अन्दर ही श्वास मार्गों में जमा हो जाता है। इस प्रकार मौर्फिया को Indirect रक्तास्थापक समझना चाहिए।

Direct रक्तस्थापक निम्न द्रव्य होते हैं—

(क) धात्वीय संग्राही औषधें—उदाहरणार्थ सीसक, रजत, ताम्र तथा लोहिक समास। सीसक सिरकित को कभी २ आन्त्रीय रक्तस्राव को रोकने के लिए मुख से भी देते हैं। पर शेष धात्वीय संग्राहकों को स्थानिक रूप में (रक्तस्राव वाले स्थान पर लगाकर) ही प्रयुक्त किया जाता है जैसे कि सूजे हुए मसूड़ों से जब खून बहता हो।

(ख) वनस्पतिजन्य संग्राही औषधें—इन में टैनिक अम्ल व गैलिक अम्ल और वो पदार्थ जिनमें ये अम्ल होते हैं परिगणित होते हैं। जैसे कि कत्था, लौगवुड, हैमेमेलिस इत्यादि। ये भी मुख्यतः स्थानिक प्रयोगों में प्रयुक्त होते हैं। हाँ गैलिक अम्ल को रक्तमूत्र या रक्तमेह (Haematuria) में लाभप्रद माना जाता है।

(ग) रक्तवाहिनी-संकोचक—उदाहरणार्थ एड्रेनेलीन (उपवृक्कों से प्राप्त एक द्रव्य-विशेष) स्थानिक रूप में प्रभाव करता है। दूसरा अर्गट है। ये यदि अन्तःपेशी-सूचीवेध द्वारा दिया जाय तो व्यापी तौर पर वाहिनी-संकोचक है। परन्तु विशेष प्रभाव गर्भाशय पर होता है। इसीलिए इसे गर्भाशय के रक्तस्रावों में प्रयुक्त करते हैं।

(घ) रक्तवाहिनी-प्रसारक—उदाहरणार्थ एमाइल नाइट्राइट्। इसका कार्य रक्तवाहिनियों का प्रसार करना होता है। इस प्रसार से रक्तदबाव घट जाता है और रक्त-दबाव के कम हो जाने से दबाव की उच्चता वाला रक्तस्राव बन्द हो जाता

है। रक्तदबाव की उच्चता के कारण होने वाले रक्तनिष्ठीवन में ये औषधि विशेष रूप से लाभप्रद होती है।

(ङ) पांचवीं श्रेणी के वो रक्तस्तम्भक हैं जो रक्त के जमने की शक्ति को बढ़ाते हैं या रक्त को शीघ्र जमने वाला बनाते हैं और इस प्रकार रक्तस्राव रोकने में सहायक होते हैं। ये दो प्रकार के हैं। ऐन्द्रियक जामक (जामक शब्द हिन्दी के जमना धातु से घड़ लिया है।) और अनैन्द्रियक जामक। खट धातु के लवण अनैन्द्रियक जामक होते हैं। ये क्योंकर इस गुण वाले होते हैं इसके लिए कोई शरीर क्रियाविज्ञान की पुस्तक पढ़ें।

ऐन्द्रियक जामक—निम्न मुख्य हैं—

१. रक्तजन्य पदार्थ जैसे कोएग्युलेन (Coagulen), हीमोप्लास्टीन (Haemoplastin) इत्यादि।

२. पूर्णरक्त (Whole blood).

३. रक्त वारि (Blood serum).

खट धातु के लवण—सद्योजात रक्तस्राव में न के बराबर लाभप्रद होते हैं। अगर देना ही हो तो खट हरिद् के १ ग्रेन के अन्त:पेशी सूचीवेध देने चाहिएँ। क्योंकि खट धातु के लवणों का यही प्रयोग अधिकाधिक शीघ्रता से प्रभावशाली होता है।

चिरकालीन रक्तस्रावी अवस्थाओं में जैसे कि हीमोफिलिया (Haemophilia) है, इसका प्रयोग करना लाभकर होता है। इसके लिए कैल्सियम लैक्टेट को ५ से १५ ग्रेन की गोली के रूप में देना चाहिए। चूंकि हीमोफिलिया में रक्त की

जामक शक्ति (Coagulability) में विकृति होती है अतः इस जामक शक्ति को बढ़ाने वाला खट का लवण हितकर होता है।

ऐन्द्रियक जामकों में से सब से उत्तम पूर्ण-रक्त है। उचित दाता (Donor) की शिरा में से ५ से १० सी०सी० की मात्रा में निकाल कर रोगी में मांसपेशी-सूचीवेध द्वारा प्रविष्ट करा देना चाहिए। अगर ऐसा न हो सकता हो तो १० सी०सी० घोड़े के रक्तवारि (Horse serum) के त्वचाधोसूचीवेध द्वारा प्रविष्ट कराने चाहिएँ और प्रति ६ घण्टे बाद पुनः देने चाहिएँ। इसकी जगह कुछ पेटेन्ट दवाईयें हैं जैसे कि हीमोप्लास्टिन कोएग्युलिन इत्यादि। इनमें से किसी का प्रयोग अभीष्ट हो तो किया जा सकता है। अत्यन्त रक्तस्राव के बाद होने वाले Collapse (मूर्च्छा विशेष) को रोकने के लिए या दूर करने के लिए पहिले तो एकदम पिच्यूइट्रिन का त्वचाधोसूचीवेध कर देना चाहिए फिर इसके बाद रोगी के शरीर में उचित दाता से रक्त लेकर प्रविष्ट कराना चाहिए। ये बहुत उत्तम चिकित्सा है।

चौदहवाँ उद्बोध

प्रतानक और प्रशामक



तानक क्या है? इसका यहाँ उल्लेख अपेक्ष नहीं है। प्रतानक शरीर में स्फूर्ति और स्वास्थ्याल्हाद को पैदा करने वाले होते हैं। यों कहा जाय तो Body tone को बढ़ाने वाले होते हैं। सर लाउडर ब्रण्टन इनके कार्य को दो कार्टूनों को खैंचकर बताया करता था। जिसने इन कार्टूनों को देखना हो हुचिसन महोदय की 'Essentials of medical treatment' में देख सकता है। इन कार्टूनों में एक कार्टून तो मरियल कुबड़े से आदमी का है जो लाठी टेक टेक कर चल रहा है और इसका मुंह भी लम्बोतरा और दुःखी सा हुआ २ है। प्रतानकों के प्रभाव के बाद ये लाठी को कंधे पर रख कर मौज में अकड़ अकड़ कर चलता हुआ दिखाया गया है। मुंह भी चौड़ा और खुशी से फूला नहीं समाता है।

बहुधा कई आदमियों की कमजोरी आंतों से अजब हुए २ विषों के शरीर में संचार होने से होती है। ऐसी हालत में इस कमजोरी को दूर करने के लिए विष का शरीर से परिहार

Date	No.	Date	No.
31 OCT 1960	2 / 2		
6 DEC 1961	14 / 24		
3 JAN 1962	3.2		
6 MAR 1962	〃		
14 MAY	1964		
106/3			
22 SEP	1965		
236/1			

Date	No.	Date	No.

(Elimination) करना ही चिकित्सा की आधारशिला होता है। ऐसी हालत में विरेचक आदि का आश्रय लेना चाहिए।

अन्य रोगियों में जहाँ स्फूर्ति की और शरीर के अन्दर तनाव पैदा करने की आवश्यकता हो प्रतानक दिए जाते हैं। इन प्रतानकों को निम्न अवस्थाओं में नहीं देना चाहिए।—१. गठिये के रोगियों में। २. रक्त के उच्च दबाव वाले रोगियों में। ३. उन रोगियों में जिनमें वातिक उत्तेजना हो जिसका पता कि बढ़े हुए प्रत्यावर्तित वेगों (Reflexes) से मालूम किया जा सकता है। ४. और वो जिन्हें निद्रानाश या मलबन्ध की शिकायत हो।

निम्न औषधियाँ प्रतानकों में मुख्य समझनी चाहिएँ। १. कुचला और इसका एल्केलायड स्ट्रिक्नीन, २. लोह, ३. कुनीन और इसकी उत्पादक छाल सिनकोना, ४. तिक्तपदार्थ ५. प्रस्फुरक।

१. स्ट्रिकनीन—वस्तुतस्तु सबसे अच्छी प्रतानक है। ये धारीदार और बे-धारीदार दोनों प्रकार की मांसपेशियों के तनाव को बढ़ाती है। चूंकि ये बड़ी तिक्त (कड़वे को संस्कृत में तिक्त और चरपरे को कटु कहते हैं।) वस्तु है अतः भूख को बढ़ाती और इस प्रकार अधिक भोजन करने की शक्ति को पैदा करती है। इसे छोटी २ मात्राओं में भोजन से पूर्व देना चाहिए। पर अगर रोगी को निद्रा नाश हो या प्रत्यावर्तित वेग बढ़े हुए हों तो तब इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। कुचला जिस में यही स्ट्रिकनीन होती है, इसी के कारण प्रतानक है। एलोपैथी

की चिकित्सा में यह प्रतानक कार्य के लिए बहुत अधिक प्रयुक्त होता है।

२. लोह—चूंकि ये रक्त में परिवर्तन लाता है, और रक्तरञ्जक पदार्थ के निर्माण करने में सहायक होता है इसलिए शरीर को पुष्टि देता है और इसी कारण प्रतानकों में सम्मिलित है। ये गठिये के बीमारों को नहीं सुखाता और मलबन्ध कारक होता है। सो इसी कारण ये गठिये के बीमारों को नहीं दिया जाता और किसी सुखविरेचक के साथ मिलाकर योगों में प्रयुक्त किया जाता है।

३. कुनीन— ये मेटाबोलिज्म (Metabolism) को कम करती है। क्या पता इसके इसी गुण के कारण ये रोगियों में स्फुर्ति के अनुभव का आविर्भाव करती हो। क्यों कि (Metabolism) के कम हो जाने से तन्तुओं का विनाश कम होता है। इसके साथ ये तिक्त भी होती है। सो अन्य तिक्तों की तरह बुभुक्षा को बढ़ाती है और इस प्रकार रोगी को अधिक पुष्ट करने में सहायक होती है। सिनकोना से ये निकलती है। सो सिनकोना इसी के कारण प्रतानकों में सम्मिलित है।

४. तिक्त पदार्थ—एलोपैथी के तिक्त पदार्थों में जैन्शियन, नारंगी, कैलम्बा, काशिया प्रभृति की परिगणना होती है। ये भूख को बढ़ाते और इसीलिए प्रतानकों में शुमार हैं। इनका भूख बढ़ाना कैसे होता है इसके बारे में हमें अभी तक कुछ ठीक नहीं पता है। कइयों का कुछ मत है तो अन्यों का कुछ और।

५. प्रस्फुरक—इसे हाइपो-फोस्फाइट और ग्लिसरो-

फोस्फेट के रूपों में अकसर प्रतानकों के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। सैनेटोजन नामक पदार्थ केसीन का ग्लिसरोफौस्फेट है। लेसिथिन और फाइटिन प्रस्फुरक वाले प्रतानक पदार्थ हैं। डाक्टर हुचिसन की प्रस्फुरक वाले पदार्थों के प्रतानक होने या न होने के बारे में जो सम्मति है, मैं उसे उद्धृत करता हूं।

"इस में बड़ा शक है कि क्या वाकई प्रस्फुरक के समास शरीर के किसी काम आते हैं। चूंकि शरीर को केवल २ ग्राम प्रस्फुरक की जरूरत होती है। और हम अपने मिश्रित भोजन (मांस और शाकों वाले मिश्रित) में ३ ग्राम से अधिक जरूर ही खा लेते हैं। और न हमें अभी तक कोई ऐसा रोग ही मिला है जिसका कारण कि प्रस्फुरक की कमी कही जा सके। ये कहना कि प्रस्फुरक के योगों के इस्तेमाल के बाद रोगी हृष्ट अनुभव करता है इस बात का सबूत नहीं कि प्रस्फुरक प्रतानक है। चूंकि हो सकता है कि रोगी का औषध में विश्वास या चिकित्सक में विश्वास उसकी अनुभूत होने वाली हृष्टता का कारण हो।"

मद्य—ये भी प्रतानक का कार्य करती है क्योंकि शीघ्र जजब होने वाली खुराक है। और इससे भोजन के अधिक हज़म और जज़ब होने में सहायता मिलती है।

मछली का तेल और माल्ट का सत भी प्रतानक समझे जाते हैं। क्योंकि ये पुष्टिकारक (Nutritious) हैं और इस प्रकार बल्य हैं।

सो इस प्रकार पाठको, आपने देखा कि प्रतानक वो भी पदार्थ हैं कि जो पेशियों के तनाव की वृद्धि करते हैं। वो भी,

जो शरीर में स्वास्थ्योत्पादक ह्लास या हृष्टता को उत्पन्न करते हैं, वो भी हैं जो शरीर की पुष्टि करते और इसलिए वल्य हैं। वास्तव में प्रतानक वही कहे जाने चाहिएँ कि जो पेशियों के तनाव को बढ़ाते हों। अन्यों को नहीं। अन्यों को पौष्टिक, वल्य इत्यादि नामों से पुकारा जा सकता है। पर चूंकि मैं पाश्चात्य चिकित्सा का विचार कर रहा हूं इसलिए मैंने नए घड़े हुए प्रतानक शब्द को टानिक शब्द का पर्यायवाची मानकर लिखा है।

अब कुछ नुस्खे जो टानिक के तौर पर वर्ते जाते हैं देते हैं—

प्र सोडाबाई कार्ब ग्रेन ५
टिंचर नक्सवोमिका बूंदें ५
जैन्शनादिकाथ मिलाओ आधे औंस तक।
ऐसी दो खुराकें लाओ।

हिदायतें—एक खुराक बराबर पानी के साथ मिलाकर सुबह शाम (दिन में दो बार) भोजन से पहिले पीवें।

ये मशहूर प्रतानक योग है। इसका मुख्य उद्देश्य भूख को बढ़ाना होता है। सोडाबाईकार्ब एक क्षार है। इसकी छोटी मात्राएँ आमाशय रस को बढ़ाती हैं। ये आमाशय रस कुचले और जैन्शन की तिक्तता के कारण और भी बढ़ता है। कुचले में मौजूद स्ट्रिक्नीन वास्तविक प्रतानक का कार्य करती है। चूंकि ये मिश्रण भूख बढ़ाने के प्रयोजन से दिया जाता है अतः इसे भोजन से पहिले पिया जाना चाहिए।

प्र. ईस्टन सीरप चार औंस लाओ।

हिदायतें—एक चाय का चमचा भर एक छटांक पानी में डालकर दिन में तीन वार भोजन के बाद पिएँ।

इस सीरप में लोहा, प्रस्फुरक, कुनीन और स्ट्रिकनीन होते हैं। चूंकि इस में लोहा है इसलिए इसे भोजन के बाद देते हैं।

प्र. फेराइ एट कुनीनि सिट्रास ग्रेन ५
लाइकर स्ट्रिकनीन बूंदें ३
कैलम्बा का क्वाथ मिलाओ आधा औंस तक।
ऐसी तीन खुराकें लाओ।

हिदायतें—प्रत्येक खुराक वरावर पानी से हल्की करके पियो। ये तीन खुराकें दिन में तीन वार भोजन के बाद पीनी हैं।

इस नुस्खे में दल का कार्य है। प्रत्येक दल का व्यक्ति दूसरे की सहायता करता है। दल के व्यक्ति, लोह, कुनीन, स्ट्रिकनीन और कैलम्बा नामक औषधियाँ हैं। कैलम्बा तिक्त औषध इसलिए डाली गई है चूंकि इस में टैनीन नहीं होती। टैनीन वाले पदार्थ लोहे के साथ पारस्परिक-वियोगी (Incompatible) होते हैं। इस लिए कैलम्बा नामक टैनीन रहित, तिक्त औषध प्रयुक्त की गई है।

प्र लाइकर स्ट्रिकनीन बूंदें ३
प्रस्फुरक, अम्ल हलका बूंदें १०
इन्फ्यूयन सिनकोना एसिड् मिलाओ आधा औंस तक।
ऐसी दो खुराकें।

हिदायतें—दिन में दो वार पिएँ। प्रत्येक खुराक पीने

से पहिले १ छटांक पानी में मिला लें।

यह नुस्खा वगैर लोहे का है। अम्ल होने के कारण भोजन के बाद दिया जाना चाहिए।

इसके इलावा बहुत सी पेटेन्ट दवाइयाँ जिनमें प्रस्फुरक कुनीन, स्ट्रिकनीन आदि होती हैं टॉनिक का काम करती हैं।

औषधियों के अतिरिक्त बहुत से भौतिक उपचार भी टानिकों का काम करते हैं। जैसे कि शरीर को सुख देने वाले शीतल प्रदेश का सेवन, नाना प्रकार के स्नान, मालिशें, व्यायामें, विद्युत् चिकित्सा, प्रकाश चिकित्सा इत्यादि। इनके इलावा विचारों का भी मन पर प्रभाव होता है। और मन के जरिए रोगी के शरीर पर प्रभाव होता है। बहुत से ऐसे महाव्यक्ति देखने में आते हैं जो हताश और निराश व्यक्तियों में आत्म-विश्वास और आशा की उमंग पैदा कर देते हैं जिससे कि शिथिल और निराश व्यक्तियों में स्फूर्ति और उत्तेजना जागृत हो जाती हैं। इस प्रकार रोगी का, औषध-चिकित्सा या चिकित्सक में विश्वास भी टानिक का काम करते हैं।

प्रशामक

प्रशामक का कार्य वातिक उत्तेजना (Nervous excitability) को प्रशान्त करना होता है। इस कार्य के लिए ब्रमिद ही प्रायः प्रयुक्त होते हैं। तीन प्रकार के ब्रमिद उपलब्ध होते हैं। पोटाशियम ब्रमिद, सोडियम ब्रमिद और

अमोनियम ब्रमिद । इनमें से पोटाशियम ब्रमिद ही बहुधा प्रयुक्त होता है।

प्र पोटाशियम ब्रमिद ग्रेन १०
स्पिरिट अमोनिया एरोमैटिकस बूंदें २०
पूदीने का अर्क मिलाओ १ औंस तक
ऐसी ३ खुराकें बनवाओ।

हिदायतें—खुराकों को थोड़े से पानी में हलका करके दिन में तीन वार भोजनोपरान्त पियें।

नुस्खे का आधार पोटाशियम ब्रमिद है। इसके साथ स्पिरिट अमोनिया एरोमैटिकस, ब्रमिद के Depressing प्रभाव को उदासीन करने के लिए मिलाया गया है। इसलिए यह संशोधक हुआ। पुदीने का अर्क संयोजक और सुवासक संवाही दोनों का कार्य करता है। मिश्रण को पानी मिलाकर कुछ हलका कर के भोजनोपरान्त देते हैं चूंकि ब्रमिद आमाशय में जाकर क्षोभ पैदा करते हैं।

यदि और अधिक प्रभावशाली प्रशामक देने अभीष्ट हों तो प्रस्वापी औषधियों (Hypnotics) को मिश्रण में मिलाकर देना चाहिए। पर प्रस्वापी की जितनी मात्रा नींद लाने के लिए दी जाती है उससे कम मात्रा प्रशामक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जाती है। बोमुरल और एडेलिन नामक यूरिया और ब्रमिदों के समास इस कार्य के लिए दिए जाते हैं और बिल्कुल सेफ (Safe) है। इन्हें बच्चों में भी दिया जा सकता है। ल्युमिनौल और सोडियम ल्युमिनौल आधा से एक ग्रेन की मात्राओं में उपरोक्त एडेलिन

प्रभृति पदार्थों से भी अधिक शक्तिशाली हैं।

जो रोगी इन प्रशामकों का सेवन कर रहे हों उन्हें चाय और कहवा नहीं इस्तेमाल करने चाहिएँ चूंकि ये पदार्थ उत्तेजक प्रभाव रखते हैं। पर अगर रोगी इन्हें छोड़ने से लाचार हो तो इन पदार्थों का अधिकाधिक संयम पूर्वक सेवन करना चाहिए। मद्य व मदिराएँ, परिमित(Moderate quantity) मात्राओं में रोगी पी सकते हैं। यह इन मात्राओं में प्रशामक प्रभाव ही रखती है। रोगियों को मसूरी मरी प्रभृति पहाड़ों पर जाना हानिकारक होता है और उन्हें मैदान में ही किसी उत्तम और स्वास्थ्य को सुखाने वाली (मुआफ़िक आने वाली) जगह में निवास करना चाहिए।

पन्द्रहवाँ उद्बोध



वैचारिक चिकित्सा



जब किसी पुरुष की मानसिक शक्तियों में विकृति आ जाती है तो कई लक्षण प्रगट हो जाते हैं जो कि या तो मानसिक विकृति के सूचक होते हैं या केवल मात्र शारीरिक होते हैं। मानसिक विकास की अपूर्णता या अस्वस्थता को कई प्रकार के नामों से सुशोभित किया गया है। मानसिक विकास की पूर्णता या स्वस्थता का ज्ञान हमें कैसे हो ये बताना बहुत कठिन है पर तो भी विकृत मनोविज्ञान की पुस्तकों के अध्ययन से बहुत कुछ पता चल सकता है। Insanity शब्द उन्माद का पूर्ण पर्यायवाची है या नहीं हमने इस पर विवाद नहीं करना है। साधारण तौर पर Insanity शब्द को पागलपन का पर्याय-वाची माना जाता है और इस पुस्तक में यही मत स्वीकृत किया जायगा। तो इस पागलपन की श्रेणी के पुरुषों और स्वस्थ आद-मियों के बीच हज़ारों प्रकार के मनुष्य हैं। इन नाना प्रकार के मनुष्यों को उनकी मानसिक अवस्थाओं को दृष्टि में रखते हुए न पूर्ण स्वस्थ ही कहा जा सकता है और न उन्हें पागलों में शुमार

किया जा सकता है।

जब इस बीच की श्रेणी के मनुष्यों में शारीरिक लक्षण प्रगट होते हैं तो उन्हें Neurasthenic कहते हैं। पर जब Hysteria प्रगट हो जाता है तो Hysteric कहते हैं। Neurasthenia और Hysteria रोगों का विचार करना इस पुस्तक का विषय नहीं है। सारांश रूप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि इस उपरोक्त बीच की श्रेणी के मनुष्यों को Psycho-neurosis का रोगी समझना चाहिए और पागलों को Psychosis का रोगी। यों तो हमारे पास तीन परिभाषाएँ हैं Neurosis,PsychoneurosisऔरPsychosis. पर पाठक इस पुस्तक के समझने के लिए उपरोक्त तात्पर्य को ही मनोनीत करें। Neurerthenia रोगियों को ही Anxiety states का शिकार माना जाता है।

१. स्वस्थ मन

२. अस्वस्थ मन
- i Neuroses
- ii Psycho-neuroses
  - i Anxiety states or Neurasthenia
  - ii Hysteria
- iiiPsychoses—iii Insanity

संस्कृत में मानसिक रोगों का नाम आधियों से सूचित किया है। इनकी चिकित्सा को वैचारिक चिकित्सा या Psycho-therapy कहते हैं। इसी Psychotherapy का वर्णन

इस अध्याय में किया जायगा।

चिन्ताग्रस्त अवस्थाएँ—

कौन नहीं जानता कि चिन्ता निम्न प्रकार के लक्षणों का आविर्भाव करती है—

(१) रोगी चिन्तित होता है।

(२) ध्यान को केन्द्रित करने में असमर्थ होता है।

(३) सिर में दर्द होती है।

(४) निद्रा अपूर्ण, विकृत या नष्ट हुई होती है।

(५) थोड़े से काम करने से रोगी थकांद का अनुभव करने लगता है।

(६) बुभुक्षा-नाश।

(७) अफ़ारा (भोजन के बाद)।

(८) मलबन्धता या अतिसार।

(९) मूत्र का बार बार या अधिक आना।

(१०) कामवासना का विलोप या एक प्रकार की क्लीवता।

(११) हृदय का धड़कना।

(१२) स्वेद का अधिक आना।

(१३) चेहरे पर शर्म की लाली या चेहरे का फ़क और पीला पड़ा हुआ होना।

भूख का न लगना, अफ़ारा, मलबन्ध, अतिसार आदि रोगी का भार घटा देते हैं और इस तरह रोगी दुर्बल भी हो जाता है। रोगी को ये समझाया जा सकता है कि उसके रोग के लक्षण चिन्ताश्रित हैं और कारण की समाप्ति पर रोग भी दूर

हो जायगा। हो सकता है कि रोगी इन चिन्ताग्रस्त अवस्थाओं से हफ़्तों महीनों एवं सालों तक रुग्ण रहे। इस चिन्ता का मुख्य कारण आत्म-विश्वास की न्यूनता होती है। रोगी चिन्ताजनक दुर्घटना को नहीं झेल सकता है और परिणाम रूप चिन्ता का शिकार बन जाता है। ये ज़रूरी नहीं रोगी में उपरोक्त सभी लक्षण हों हो सकता है कि कोई एक ही लक्षण होवे। हमारा चिकित्सा का उद्देश्य रोगी के आत्मविश्वास को जागृत करना या पुनः स्थापित करना होता है। ये स्मरण रहे कि रोगी को केवल इतना कह देने से कि कोई शारीरिक रोग नहीं, रोगी की चिन्ता से उत्पन्न शारीरिक लक्षण दूर नहीं होते हैं। इस प्रकार के रोगी को ऐसे उपदेश या आदेश कई जगह से प्राप्त हो चुके हुए होते हैं पर उसकी मानसिक कमज़ोरी आधि को दूर करने में बाधक होती है और वह इस प्रकार के आदेशों पर अमल नहीं कर सकता है।

इस आत्म विश्वास को बंधाने के लिए रोगी को किसी का सहारा चाहिए होता है। जिस कार्य को वह स्वयं करने में असमर्थ होता है हो सकता है कि किसी अन्य व्यक्ति की सहायता से करने में समर्थ हो जावे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए चिकित्सक को चाहिए कि रोगी का विश्वास अपने अन्दर पैदा करे। इस विश्वास को अपने अन्दर पैदा करने या पैदा हुए को दृढ़ करने के लिए चिकित्सक को अनेकों प्रकार के उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है। परन्तु ऐसे सब उपायों में से सब से उत्तम उपाय रोगी की रोगी-परीक्षा है। क्रियात्मिक तौर पर की गई रोगी की रोग-

परीक्षा रोगी पर बहुत असर डालती है और रोगी का चिकित्सक में बड़ा विश्वास हो जाता है।

रोगी के रोग की सूचना गम्भीरता पूर्वक करनी चाहिए। रोगी को इस तरह से कहना कि "रोग मामूली है और खुद अच्छा हो जायगा इलाज की कोई जरूरत नहीं" सख़्त गलती है। इसके बाद रोगी से उसकी सारी शिकायत सुननी चाहिए। उसे यह कह कर कि संक्षेप से मोटी २ तकलीफें बताओ, रोग के वर्णन में निरुत्साहित नहीं करना चाहिए। इस प्रकार सारी शिकायत सुनने का रोगी पर बहुत अच्छा प्रभाव होता है। शिकायत पूरी २ सुन लेने के बाद रोग का पूर्ण इतिवृत्त लेना चाहिए। इस प्रकार के पूर्ण इतिवृत्त के लेने का भी रोगी पर बड़ा असर पड़ता है। और चिकित्सक रोगी के विश्वास को लेने में शीघ्र ही सफल-प्रयत्न हो जाता है। इन रोगियों के इतिवृत्त अन्य रोगियों के इतिवृत्तों की तरह आवश्यक बातों के Record ही नहीं होने चाहिएँ बल्कि रोगी की सब छोटी २ बातों का लेखा होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो रोगी का कुल जीवन वृत्तान्त होना चाहिए। उसके बाल्यकाल, सहपाठियों के साथ बिताए दिनों, अपने घर के बन्धु बान्धवों के साथ व्यतीत किए दिनों आदि सब का पूरा २ व्यौरा होना चाहिए। ये इतिवृत्त ऐसा होना चाहिए कि इस से रोगी की मानसिक अवस्था का पूरा २ पता लग जाय। रोगी के धार्मिक मन्तव्यों, राजनैतिक विचारों, जीवन के उद्देश्यों, आकांक्षाओं आदि सब का पूरा २ पता मिल जाय। यदि इतिवृत्त को उपरोक्त प्रकार से लिया जाय तो इन धार्मिक

मन्तव्यों आदि के ज्ञान के लिये सीधे सवाल करने की जरूरत नहीं रहती है। और न सीधे सवालों के करने से रोगी ठीक २ बताते ही हैं। यदि रोगी के रोग में अच्छी दिलचस्पी दिखाई जाय तो रोगी अनेकों बातें बताता है। सारांश यह है कि इस उपाय के बर्तने से यानि दिलचस्पी दिखाने से रोगी अपना अन्तःकरण (या यहाँ पर मन) खोलकर चिकित्सक के आगे रख देता है वे बातें जो कि उसे सता रही होती हैं अर्थात् गुप्त चिन्ताएँ जिनको कि वह किसी के सामने नहीं बयान करता चिकित्सक के सामने आप से आप प्रगट कर देता है। इन चिन्ताओं में से कई गुह्येन्द्रियों सम्बन्धी होती हैं।

उपरोक्त प्रकार का अभिवाञ्छित इतिवृत्त एक ही वार के रोगी-चिकित्सक के वार्तालाप से नहीं प्राप्त होता है। इसके लिए कई दिनों की गुफ्तगू दरकार होती है। जब तक कि रोगी को यह भरोसा न हो जाय कि चिकित्सक विश्वसनीय व्यक्ति है तब तक भला वह अपने रहस्य उसे क्यों कर बताएगा। इसी के लिए चिकित्सक को सहानुभूति दिखानी होती है। रोगी के रोग को गम्भीरता पूर्वक ख्याल करते हुए उसमें दिलचस्पी लेनी होती है। और कई २ दिन की गोष्ठियाँ करनी पड़ती हैं तब जाकर राज़ खुलता है। और जहाँ राज़ खुला और रोगी का विश्वास चिकित्सक में जमा तो फिर जानो कि चिकित्सक का कार्य चीची अंगुली का कर्तन भर रह गया। रोगी तथा चिकित्सक के वार्तालाप (इतिवृत्त सम्बन्धी) काफ़ी लम्बे समय तक के होने चाहिएँ। शुरू के दिनों के वार्तालाप तो खास कर लम्बे होने चाहिएँ।

इस इतिवृत्त के बाद रोगी की पूर्ण-परीक्षा करनी चाहिए। इसके दो लाभ होते हैं। एक तो यह कि रोगी को पूर्ण विश्वास दिलाया जा सकता है कि उस की पूर्ण परीक्षा कर ली गई है और अन्य कोई रोग उपस्थित नहीं है। दूसरे इस प्रकार की पूर्ण परीक्षा का रोगी पर बड़ा असर होता है। उसका विश्वास चिकित्सक में बढ़ता है। अगर इस पूर्ण-परीक्षा से रोगी में किसी आंगिक (Organic) रोग का पता मिले तो उसे रोगी को भली प्रकार समझा देना चाहिए। अच्छी तरह स्पष्ट कर देना चाहिए कि ये आंगिक रोग कितने लक्षणों का कारण है, और कौन २ से लक्षण मानसिक विकृति के परिणामरूप हैं। और उनके उद्भव में आंगिक रोग का कोई दख़ल नहीं है। जब इस प्रकार की पूर्ण-परीक्षा हो चुके और मानसिक रोग के अतिरिक्त और कोई रोग उपस्थित न हो तो रोगी को समझाना चाहिए कि ये लक्षण चिन्ताओं का परिणाम हैं। यदि पूर्ण इतिवृत्त ठीक तरह लिया गया होगा तो रोगी को निर्दिष्ट किया जा सकता है कि चिन्ताएँ किस कारण का कार्य रूप हैं। इस प्रकार चिकित्सक इन चिन्ताओं का परिहार कर सकता है। अगर ऐसा नहीं कर सकता तो कम से कम रोगी को ये खूब अच्छी तरह समझा सकता है कि वह इन चिन्ताओं के विषय में ग़लत ख़्याल रखता है और इन ग़लत ख़्यालों की वजह से उसकी चिन्ताएँ दूर नहीं होती हैं। अगर वह ठीक तरह इन चिन्ताओं को दूर करे तो उसे किस प्रकार की विचार परम्परा का आश्रय लेना चाहिए और वह दूर करने में सफल प्रयत्न हो सकता है।

१. चिकित्सक चिन्ताओं का परिहार कैसे कर सकता है– बहुधा ऐसा देखने में आता है कि वो चिन्ताएँ जो कि रोग का कारण रूप हुई थीं निवृत्त हो चुकी होती हैं पर रोगी रोग के बारे में चिन्तित हो गया हुआ होता है इस लिए रोग अपना घर किए हुए होता है।

एक वार का ज़िकर है, एक आदमी जब १६१४ की लड़ाई छिड़ी तो उसे डर हुआ कि कहीं लड़ाई में न बुला लिया जाऊँ इस लिए उसे अपचन आदि के लक्षण प्रगट हुए। लड़ाई खतम भी हो गई पर उसे ज्यों कि त्यों बीमारी बनी रही। चिकित्सक उसके इतिवृत्त से इस परिणाम पर पहुंचा कि रोग का कारण लड़ाई का डर था। पर इसके बाद अब इसे बीमारी की चिन्ता है। अब वो कारण तो जाता रहा पर इसे एक और चिन्ता चिमट गई है कि कुछ खाया नहीं कि बदहजमी हो जायगी। चूंकि जब लड़ाई के डर से डरा हुआ कुछ खाता था तो ऐसा ही होता था। अब इसके दिल से लड़ाई का डर तो जाता रहा पर ये डर घर कर गया है कि कुछ खाया तो नहीं पचेगा। इस लिए चिकित्सक ने उसे समझाया कि तुम्हारी बीमारी लड़ाई के डर से शुरू हुई थी। और डर से आमाशय का रस कम निकलता है (Inhibition हो जाती है) और इस लिए अपचन हो जाता है। सो डर तो तुम्हारा चला गया है और अब कोई वजह नहीं कि तुम अच्छी तरह भोजन न पचा सको। ऐसा समझाने पर उसने धारणा की कि वह बगैर डर के खा सकता है और इसी से वह अच्छा हो गया।

इस ऊपर के उदाहरण से यह शिक्षा मिलती है कि विश्वास दिलाने के लिए चिकित्सक को पहिले रोगी का विश्वास अपने में जमवा लेना चाहिए और फिर केवल इतना मात्र नहीं कहना चाहिए कि रोग कुछ नहीं है पर तरीके से समझाना चाहिए कि रोग का कारण दूर हो चुका है। रोग का कारण मालूम करने के लिए पूरा इतिवृत्त चाहिए। विश्वास के लिए लम्बी २ गोष्ठियां और पूर्ण रोगी परीक्षा।

२. दूसरा तरीका जो रोगी की चिन्ताओं को दूर करने का है वो उस हालत में है कि जब रोगी की चिन्ता का कारण दूर न हुआ २ हो पर उपस्थित हो। ऐसी दशा में रोगी के कारण का पता लगाकर उसे यह बताया जाता है कि देखो तुम ठीक तरीके पर अपनी विचारशृङ्खला को नहीं बांधते हो। तुम अपनी समस्या का हल जिस तरह कर रहे हो ग़लत तरीका है। इसे इस तरह करना चाहिए।

अकसर देखा गया है कि रोगी को नहीं पता होता कि लक्षण जो प्रगट हो रहे हैं वो किस चिन्ता या दुःख की अभिव्यक्ति हैं। इस चिन्ता रूप कारण का ढूंढ़ना और हल करना चिकित्सक का कार्य होता है। हो सकता है रोगी जिससे विवाह करना चाहता हो, न कर सकता हो और इसलिए कई शारीरिक लक्षण प्रगट हो गए हों। हो सकता है कि उसे नौकरी छूट जाने का डर हो और इस कारण कई लक्षण प्रगट होने लग गए हों। इत्यादि। रोगी विश्वसनीय व्यक्ति को ही अपने दिल का हाल खोल कर बताता है। और रोगी के दिल का हाल जान कर ही

चिकित्सक चिकित्सा कर सकता है अन्यथा नहीं। इसके लिए रोगी का विश्वासपात्र होना नितान्त आवश्यक है। और एक वार विश्वासपात्र होकर और सब कारण जान कर चिकित्सक सहानुभूति पूर्वक रोगी की वहुतेरी अड़चनें या दुविधाएँ दूर कर सकता है। और इस प्रकार उसे उसकी चिन्ताओं से मुक्ति करा सकता है। पर इन छिपी हुई चिन्ताओं का जानना आसान नहीं होता। इनके जानने के लिए विचार-विश्लेषण (Psycho-analysis) विधि का अध्ययन आवश्यक है। विचार-विश्लेषण की विधि को इस पुस्तक में नहीं दिया जा सकता है।

हिस्टीरिया या योषापस्मार

(नोट्—योषापस्मार नाम से पाठक उद्भ्रान्त न हों कि हिस्टीरिया मनुष्यों को नहीं हो सकता है।)

इस रोग के नाना लक्षणों का उल्लेख इस जगह नहीं किया जा सकता है। यहाँ पर केवल तीन लक्षणों की चिकित्सा पर ही विचार किया जायगा। पक्षाघात, दौरे और स्मृतिविलोप।

स्मृतिविलोप कई प्रकार का होता है जैसे कि कोई मनुष्य अपने जीवन की किसी मुख्य घटना को सर्वथा भूल जाय। पर यहाँ पर स्मृति विलोप से मतलब उस प्रकार के स्मृति-विलोप से है जिसमें मनुष्य कुछ समय की सब स्मृतियों को सर्वथा भूल जाता है। उसके लिए ऐसा हो जाता है जैसे कि वो समय उसके जीवन में कभी आया ही नहीं है। इस लक्षण का विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो तो पाठक मेरी भावी में लिखी जाने वाली 'विकृत मनोविज्ञान' नामक पुस्तक का अवलोकन करें।

कई पुरुष जब किसी अत्यन्त- घृणाजनक या रौद्र दृश्य को देखते हैं तो मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। इस प्रकार वो अपने आपको उस रौद्र या घृणाजनक दृश्य को देखने से बचा लेते हैं। पर इस तरह का बचाना उनकी इच्छा के आधीन नहीं होता है। इसी प्रकार कई विचारकों का मत है कि जिन विचारों के लिए हिस्टीरिया का रोगी सहने की (बर्दाश्त) शक्ति नहीं रखता है उनसे नजात पाने के लिए उसमें सामयिक (Periodical) स्मृति-विलोप का लक्षण प्रगट हो जाता है। यद्यपि उसका घटना-वर्णन ये स्पष्ट बताता है कि इस स्मृति-विलोप का कारण उपस्थित है। पर रोगी साफ़ तौर पर एहलान करता है कि उसे उस कारण की कोई परवाह नहीं। उससे वो नहीं घबराता। ये ठीक है कि वो नहीं घबराता। वो झूठ नहीं कहता। वो अपने मन की सचाई कहता है और उसका मन भी साफ़ होता है। पर असली रहस्य तो ये है कि वो स्मृति-विलोप द्वारा उस कारण की दुखदायिता से छुट्टी पा गया है सो अब उसे इस कारण की (एहलानिया) कोई फिकर नहीं है। पर चिकित्सक को उसके इस एहलान से या कथन से ग़लती में नहीं पड़ना चाहिए। रोगी के इति वृत्त के आधार पर स्मृति-विलोप का कारण निर्णय करना चाहिए। रोगी के इस कथन से कि वो इस प्रकार ढूंढ़े हुए कारण की फ़िक्र नहीं करता चिकित्सक को अपना निर्णय नहीं बदलना चाहिए।

पक्षाघात—अब ये बताया जायगा कि हिस्टीरिया रोगी के पक्षाघातों को कैसे दूर कर सकते हैं। इसके दूर करने

के दो तरीके हैं। एक सीधा, दूसरा ठगी का। सीधा तरीका ठगी वाले तरीके से अधिक लाभप्रद होता है।

सीधा तरीका—पहिले रोगी का पूर्ण इतिवृत्त लेकर, पूरी परीक्षा कर के, उसे ये बताओ कि शरीर के किसी अंग जैसे मांस पेशियों, वातनाड़ियों, सुषुम्ना, व मस्तिष्क में कोई क्षति या वैकारिक स्थान नहीं है। परन्तु ये पक्षाघात उसकी मानसिक दशा में परिवर्तन का नतीजा है। 'चूंकि तुम्हारे मन में ये विचार घर कर गया है कि तुम पक्ष (हाथ, पांव आदि जो भी पक्ष आघात वाला है) को हिला नहीं सकते हो। और इसी-लिए तुम नहीं हिला सकते हो।' एक दम साथ ही यह भी बताओ कि इसका ये मतलब नहीं कि बीमारी बनावटी है या रोगी धोखा (Malinger) कर रहा है पर वास्तव में रोगी ये यकीन किए हुए है कि वो पक्ष नहीं हिला सकता और इसीलिए नहीं हिला सकता है। "परन्तु ये यकीन ठीक नहीं, बेबुनियाद है ग़लत है। मेरा मतलब ये नहीं कि तुम्हारी बीमारी बनावटी है पर तुम्हारे मन पर ये यकीन जमा हुआ है कि तुम पक्ष को नहीं हिला सकते हो। और ये यकीन सरासर ग़लत है।" इसके जवाब में रोगी (सुरेन्द्र) कहेगा कि मैंने कई बार कोशिश की है पर हिला नहीं सकता हूं।

वैद्य—"कोशिश तो तुमने की होगी। मेरा कोशिश से मतलब नहीं। मैं तो कह रहा हूं कि तुम्हारा यकीन ग़लत है। जब तुम कोशिश कर रहे हो, तुम्हारे दिल में यकीन था कि तुम नहीं हिला सकोगे और इसीलिए नहीं कामयाब हुए।"

सुरेन्द्र—मैं तो इससे (पक्ष से) खूब काम लेना चाहता हूं।

वैद्य—"पर तुम्हारे दिल में क्षतिधन लेने का ध्यान घर किए हुए है।"

नोट्—क्षतिधन लेने का जिकर वैद्य इसलिए करता है क्योंकि उसने पहिले लिए हुए इतिवृत्त से ये पता लगा लिया है कि पक्षाघात का कारण क्षतिधन लेने का विचार है। पर यहाँ पर जो भी विचार रोगी के मन में गुप्त रूप से आघात का (या स्तम्भ का) कारण हो उसे तत्काल रोगी को सुना देना चाहिए।

इस पर रोगी नाराज़ हो जायगा। क्योंकि वैद्य ने रोगी की इच्छा के विरुद्ध कह दिया है। पर रोगी को ये समझाना चाहिए कि वैद्य उस पर कोई दोषारोपण नहीं कर रहा है। वैद्य का ये मतलब नहीं कि रोगी ने जान कर अपना पक्षाघात किया हुआ है। पर मतलब तो इतना ही है कि अनैच्छिक रूप से क्षतिधन के विचारप्राबल्य ने उसे लकवे से आक्रान्त किया है। उपरोक्त रौद्र दृश्य वाला उदाहरण देकर, वैद्य को चाहिए कि अपना भाव रोगी के सामने स्पष्ट कर दे। इस विधि से रोगी के मन पर वैद्य के विचार की सत्यता का असर होगा और वो वैद्य के कथनानुसार प्रयत्नशील होगा। वो कुछ कुछ पक्ष को हिलाने जुलाने लगेगा। उसे प्रोत्साहित करो। और अधिक हिलाएगा। इस प्रकार का पक्ष का हिल सकना रोगी के मन पर वैद्य के विचार की सत्यता को और भी दृढ़ करेगा। अब रोगी को अपनी कोशिश में ढ़ील न आने देनी चाहिए। जब तक रोगी स्वस्थ पुरुष की

न्याईं पूरी तरह अंग को (पक्ष को) हिलाने जुलाने न लगे तब तक वैद्य को चाहिए कि धैर्य पूर्वक कोशिश करता जाय। इस चिकित्सा में कई वार बहुत समय लग जाता है। इसलिए तब तक इस चिकित्सा को न प्रारम्भ करे जब तक पर्याप्त समय न दे सकता हो। क्योंकि अगर इस प्रयत्न के बीच में अधूरा ही छोड़ दिया जाय तो बचा हुआ आघात फिर बड़ी मुश्किल से और बहुत ही धीरे २ ठीक होने में आता है। वैद्य के इस प्रयत्न से पूर्व रोगी का इति वृत्त लिया हुआ होना चाहिए। उसकी पूरी परीक्षा की हुई होनी चाहिए और उसका पूर्ण विश्वास, जहाँ तक हो सके अपने में जमाया हुआ होना चाहिए।

ये तो हुआ सीधा और सरल तरीका, अब एक ठगी से भी दूर करने का तरीका है। वो है बिजली को लगाना, मालिशें करना, अंगों का हिलाना आदि। इनसे रोगी के मन पर प्रभाव होता है कि ये आघात को अच्छा करने के तरीके हैं और इनसे आघात अच्छा हो जायगा और इसलिए आघात अच्छा हो जाता है। इस मानसिक प्रभाव के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं कि जिसके द्वारा ये तरीके रोगी के मानसिक विकार जन्य आघात को दूर करने में कामयाब होवें। ये तरीके एक तरह के ठगी के तरीके हैं और सीधे तरीके से कम उपादेय हैं। यदि रोगी इन भौतिक विधियों से स्वस्थ हुआ हो तो वो कभी भी यह मानने को तैय्यार नहीं होता कि उसके विचारों में किसी प्रकार का दोष है और उसे उस वैचारिक दोष को दूर करने के लिए प्रयत्नशील होना

चाहिए। यदि सीधे तरीके से आघात दूर किया गया हो तो रोगी इस बात का पूरा २ अनुभव करता है कि वैचारिक दोष है और इसलिए वह चिकित्सक को अपने सब विचार अधिक विस्तार से बताता है। और इस विषय में उसकी सलाह लेने और कार्य रूप में लाने के लिए बड़ा उत्सुक होता है। उसकी इस उत्सुकता का उसे यह लाभ होता है कि चिकित्सक के परामर्श से आघात की कारण रूप चिन्ताओं को अपने मन से उखाड़ फैंकने में समर्थ हो जाता है। और इस प्रकार रोग का समूल नाश होता है। पर ठगी वाले तरीके में यह संभव नहीं होता।

दौरे और स्मृति-विलोप— दौरे और स्मृति-विलोप क्या हैं —? केवलमात्र अनिवार्य एवं अनभिवाञ्छित स्थिति या असह्य विचार से छुटकारा पाने के लिए उपाय (या साधन) रूप हिस्टिरिया के रोगी में पैदा हुए २ लक्षण हैं। यूरोप को गत १९१४ की महासमर में एक व्यक्ति फ्रन्ट लाइन में लड़ते हुए इसी प्रकार के दौरों का शिकार हो गया था। जब उसे वापस घर भेजा गया तो वह अकसर दौरों का शिकार हुआ करता था। ज्यों ही उसने लड़ाई का नाम सुना कि दौरे आने लग जाते थे। ऐसे दौरों को रोकने के लिए आस पास के घरों वाले इकट्ठे हो जाते थे। पुलिस का सिपाही आजाता था इत्यादि। पर इन दौरों को रोकने का सब से बढ़िया इलाज उस व्यक्ति को अकेला छोड़ देने का है। तात्पर्य ये है कि उसके पास कोई न जाय। अगर वो घर में हो तो घर के व्यक्ति घर से बाहर चले जाएँ। ऐसे व्यक्तियों का, दर्शकों की अनुपस्थिति में, दौरा बहुत जल्दी समाप्त

हो जाता है। इन दौरों और स्मृति-विलोपों की चिकित्सा यह है कि पहले उपरोक्त असह्य विचार का पता लगाया जाय और फिर रोगी का उस विचार को देखने का दृष्टिकोण ऐसा बदला जाय कि उसे वो असह्य विचार असह्य न रहे। रोगी अकसर ये कहते हैं कि ऐसा कोई विचार नहीं कि जो उन्हें इस प्रकार असह्य हो। या वस्तुतस्तु उन्हें नहीं पता होता है। पर इस विचार का पता लगाना कुछ मुश्किल नहीं होता। निम्न विधि बर्तनी चाहिए। रोगी को कहो कि एक बिस्तरे पर लेट जाए और अपने अंगों को शिथिल करदे। इस दशा में उसे कुछ अर्द्धनिद्रा (आधी सी नींद) आने दो। इसके बाद वो झट बता देगा कि कौनसे विचार उसके मन में आते हैं। या जब उसे स्मृति-विलोप हुआ था तो कौनसे विचार उसके मन में आते थे। हो सकता है कि कुछ रोगियों पर ये तरीका कामयाब न हो। पर अधिकांश में आशातीत फल देता है। एक रोगी ने इसी तरह सोच कर ये बताया कि वह स्मृति-विलोप के समय आत्मघात करना चाहता था। चिकित्सक ने उसके साथ उसकी कठिनाइयों पर बात चीत करके उसे समझाया कि उसकी कठिनाइयाँ आम आदमियों की कठिनाइयां हैं और इनके अन्त करने के लिए आत्मघात जैसा उपाय सोचना फ़िजूल है। इससे रोगी पर असर हुआ उसके स्मृति-विलोप जाते रहे। इसी तरह अगर कोई सिपाही यह समझता हो कि वह बड़ा डरपोक है। और ये डरपोकपने का ख्याल उसे दौरे लाता हो तो उसका यह ख्याल उपरोक्त तरीके से मालूम करके उसे समझाओ कि वह कोई डरपोक नहीं। वह उतना ही दिलेर है जितना कि

और आदमी हैं। उसमें कोई ख़ास ऐसी बात नहीं है। इससे उसके दौरे जाते रहेंगे। इसी तरह इस वैचारिक चिकित्सा का लाभ इस रोग में लेना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कई रोगियों में लक्षण मानसिक ही होते हैं। कोई शारीरिक लक्षण प्रगट नहीं होता। अर्थात् उनके मानसिक विकारों से उद्भव लक्षण मानसिक सीमा तक ही रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों की चिकित्सा भी वैचारिक ही होती है। पर इसका उल्लेख इस छोटी सी पुस्तक में करना वाञ्छनीय नहीं। इस लिए इस अध्याय को यहीं समाप्त किया जाता है।

सोलहवाँ उद्बोध

भौतिक चिकित्सा



धुनिक हिन्दी-विज्ञ भौतिकी शब्द को Physics के लिये प्रयुक्त करते हैं। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए मैंने विद्युत, प्रकाश, ताप, व्यायामों तथा मर्दन आदि की चिकित्सा को भौतिक चिकित्सा का नाम दिया है। यद्यपि भौतिक शब्द भूत शब्द से व्युत्पन्न हुआ हुआ है पर इससे पाठक यह न समझें कि मैंने उसी भूत-विद्या को भौतिक चिकित्सा से सूचित किया है। भूत-विद्या का नाम इस पुस्तक में वैचारिक चिकित्सा रक्खा गया है।

इस चिकित्सा के सम्बन्ध में दो गुर याद रखने चाहिएँ। (१) जो चिकित्सा रोगी की दर्द को बढ़ादे उसे हानि-कारक समझें। (२) रोग जितना तीव्र या सद्योजात हो चिकित्सा उतनी ही कोमल और अनुद्धत होनी चाहिए। उदाहरणार्थ यदि सद्योजात सन्धिशूल होवे तो केवल विश्राम और सप्रकाशी ताप का ही प्रयोग करना चाहिए। पर शूल यदि चिरकालिक हो तो जोड़ का मर्दन, संचालन, संतपन इत्यादि प्रक्रियाओं को वर्तना चाहिए। सब से पहिले मर्दन को लेते हैं।

मर्दनादि चिकित्सा

मर्दन को संचालन प्रक्रिया के साथ ही अकसर प्रयुक्त किया जाता है। पर बहुधा संतपन और चापलन को भी मर्दनादि चिकित्सा का सहकारी बना देते हैं। विद्‌युत् को संस्कृत में चपला, विद्युत्, तड़ित्, सौदामिनि, चञ्चला इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। मैंने चपला से चापलन शब्द को घड़ लिया है।

मर्दनादि मुख्यतः तीन प्रकार से किया जाता है।

पहिले प्रकार में संताडन, टङ्करण इत्यादि आते हैं। इसमें पीटा जाता है या टकोरें दी जाती हैं। इसे अङ्गरेज़ी में Effleurage कहते हैं। दूसरे प्रकार में मुट्ठी भरना, घुटना (पञ्जाबी शब्द है यदि प्रान्तीय भाषाओं के उचित शब्द हिन्दी में भाव प्रकाशन के लिए लेने आवश्यक हों तो इसमें हमें हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिए।) चुटकना, गूंधना अवपीड़न, अवचूर्णन आदि आते हैं। अङ्गरेज़ी में इसे Petrissage कहा जाता है। तीसरा मालिशों का प्रकार मर्दन, लेखन, पेषण, घर्षण कण्डूयन आदि का है। मालिशों के इन मुख्य ३ भेदों के अतिरिक्त और भी भेद हैं पर उनका उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ तरङ्गी-करण अर्थात् शरीर के पिलपिले (जैसे पिंडलियाँ हैं) भागों में लहरें निकालना आदि। फिर इन्हीं भिन्न २ प्रकार की मालिशों को कई तरह मिला जुलाकर रोगियों में प्रयुक्त किया जाता है।

मर्दनादि स्थानिक तौर पर या शरीर के सर्वत्र व्यापी

तौर पर किए जाते हैं। व्यापी के लिए पौने से एक घण्टे तक का समय लगाया जाता है। स्थानिक के लिए १५ से २० मिनट। प्रतिदिन या बीच में दिन छोड़ २ कर इसका विधान करना होता है। मैंने अपनी फिरङ्ग रोग नामक पुस्तक में पारद द्वारा की जाने वाली फिरंग की चिकित्सा में बता दिया है कि रोग की निवृत्ति के लिए पारे से मालिश किस तरह की जाती हैं पर यह विचार क्योंकि उस पुस्तक का विषय नहीं था, अतः इसे संक्षेप से दिया गया है। यहां पर भी यह इस पुस्तक का विषय नहीं है अतः बड़े संक्षेप से ही दिया जायगा।

मर्दनादि चिकित्सा निम्न अभिप्रायों को लक्ष्य में रख कर की जाती है।

(१) मालिश की गई जगह का रक्त संचार (Circulation) बढ़ जाता है।

(२) मांस पेशियों का तनाव बना रहता है। और यदि इसका अभाव हो गया हो तो पुनरागमन हो जाता है।

(३) मांस पेशियों को निष्कार्यता के कारण क्षीण नहीं होने देती है। अर्थात् Disuse atrophy नहीं होने देती है।

(४) मांस पेशियों की संकुचन शक्ति या संकोच (Contraction) द्वारा प्रगट होने वाली गतिशक्ति (Motor power या कर्मण्यता) को बनाए रखती है। और अगर इस कर्मण्यता का किसी कारण लोप हो गया हो तो उसे पुनः जागृत करने में आवश्यक होती है।

(५) यदि कहीं कोई सोज़िश हो या गांठ सी पड़ गई हो तो उसे जज़ब करने में सहायक होती है।

मुख्य रूप से तो मालिश से रक्त-संचार बढ़ता है। परित्यज्य (Waste) पदार्थ खून द्वारा विसर्जित होते हैं। और पौष्टिक पदार्थ इसी खून द्वारा तन्तुओं को प्राप्त होते हैं। और मांसपेशियों की क्रियाशून्यता नहीं होती और इसलिए वो क्षीण होकर कार्य करने में अशक्त नहीं होती हैं।

व्यापी मर्दनादि चिकित्सा मुख्यत: निम्न अवस्थाओं या रोगों में लाभकर होती है।

(१) रोगोत्तर क्षीणताओं में क्षीण हुई हुई मांसपेशियों की सतनुता (या तनाव) को पुनरुज्जीवित और पूर्ववत् विकसित करने के लिए।

(२) स्थूलता में—स्थूलता जो शरीर में, व्यायाम के न करने के कारण वसा और मेदा की अधिकता हो जाने से हो जाती है। मालिश, मांसपेशियों में हरकत पैदा करती है; अर्थात् उनकी एक प्रकार की व्यायाम करती है। व्यायाम के लिए और व्यायाम में वसा और मेदा का खर्च होता है। और इस प्रकार एक ओर रोगी की सेहत अच्छी होती है दूसरी ओर मुटापा दूर होता है।

(३) विचार नैर्बल्य (अर्थात् निर्बल विचारों वाले या Psychasthenic पुरुषों) में मालिश बड़ा फ़ायदा पहुंचाती है। इसी तरह वातिक नैर्बल्य (वातनाड़ियों की निर्बलता या Neurasthenia) में मालिश का इलाज बड़ा ज़रूरी

होता है। रोगी किस प्रकार लाभ प्राप्त करता है इस विषय में अभी हमें अधिक ज्ञान की अपेक्षा है। हम ठीक ठीक तरह नहीं जानते हैं और जानने के लिए अभी प्रयत्नवान् हैं।

स्थानिक तौर पर—

(१) नाना प्रकार के आघातों में जैसे पक्षाघात इत्यादि। इन्हें आम बोलचाल की भाषा में कहा जाता है कि लकवा मार गया।

(२) मांस पेशियों की विविध क्षीणताओं में। Myopathies में, Myelopathies में, Hysteric और Disuse atrophies में इत्यादि। जब ये क्षीणताएँ स्थानिक हों और अकसर स्थानिक होती हैं तो मर्दनादि चिकित्सा स्थानिक रूप से की जाती है।

(३) संधिभ्रंशों, शैथिल्यों या वैचिल्यों में जब रोगी अंगों को प्रयोग न कर सकता हो तो प्रायः मर्दनादि किया जाता है। संधिभंगों में भी इसी तरह मर्दनादि किया जाता है। संधि भंगों में प्रगट होने वाले Contractures (कंण्ट्रैकूचर्स) में मर्दनादि चिकित्सा बहुत उपादेय होती है।

नोट्—उपरोक्त सब स्थानिक अवस्थाओं में कब मर्दन आदि प्रारम्भ करने चाहिएँ और कैसे करने चाहिए इनका ज्ञान चिकित्सक को पूरे तौर पर अन्य इस विषय की पुस्तकों से ठीक तौर पर प्राप्त किया हुआ होना चाहिए।

(४) गठिये और पुराने आमवात (आमवात रोग Rheumatism का पूरा पूरा पर्यायवाची नहीं है। पर यहाँ

पर ये शब्द Rheumatism के अर्थों में प्रयुक्त किया गया है।) के रोगों में इस चिकित्सा का बड़ा लाभ होता है। आमवात की गांठों को जो अकसर त्वचा में बन जाती हैं पहिले फेह् (पंजाबी शब्द है) दिया जाता है फिर घर्षण द्वारा घिसी हुई गांठ को जज़ब कराने की कोशिश की जाती है। संतपन से भी सहायता ली जाती है। आमवात रोग में जब मांसपेशियों में सौत्रिक तन्तुओं का प्रादुर्भाव हो जाता है (Fibrosis होता है।) तो अवपीड़न (मुट्ठी भरना या गूंधना) रोगी को बहुत सुखाता है और लाभप्रद भी होता है।

आमवात की सोजन से अचल या निश्चल हुए हुए जोड़ों को भी मालिश बहुत फायदा पहुंचाती है। इनके इकट्ठे हुए २ द्रव को जज़ब कराती है। यदि साथ ही संचालन भी प्रारम्भ किया जाय अर्थात् जोड़ पर शनैः२ संचलन किया जाय तो धीरे २ जोड़ गतियुक्त होना प्रारम्भ कर देता है और रोगी बड़ा आराम महसूस करता है। इसके साथ सप्रकाशिक ताप (Radiant heat) या केवल संतपन का प्रयोग भी प्रयोज्य होता है।

(५) ये तो इस पुस्तक में बताया ही जा चुका है कि मलबन्धता में जब उदर की सामने के दीवार की मांसपेशियों में तनाव की कमी या अभाव हो तो मालिश एक अच्छी चिकित्सा है। (देखो मलबन्ध सम्बन्धी विचार।)

संतपन चिकित्सा या ऊष्मोपचार

ताप द्वारा की जाने वाली चिकित्सा को संतपन

चिकित्सा के नाम से पुकारा जाता है।

संतपन चिकित्सा व्यापी तथा स्थानिक दो प्रकार की है। ताप सूखी चीजों द्वारा देना अभीष्ट है या गीली चीजों द्वारा इस दृष्टि से भी संतपन के दो प्रकार हैं। शुष्क संतपन और आर्द्र संतपन। उदाहरणार्थ हम ईंट का सेक करें तो शुष्क संतपन में परिगणित होगा पर अगर गरम पानी की टकोर करें तो आर्द्र संतपन कहा जायगा। जल चिकित्सा जिस में पानी को गरम करके या वाष्प बना करके चिकित्सा में प्रयुक्त किया जाता है संतपन चिकित्सा का भी एक भाग है। ये आर्द्र संतपन-चिकित्सा में सम्मिलित किया जायगा।

संतपन चिकित्सा मुख्यतः किन अवस्थाओं या रोगों में प्रयुक्त की जाती है?—

(I) व्यापी रूप से जबकि शरीर पर स्वेद लाना हो, और प्रशामक प्रभाव पैदा करना हो।

(क) चिरकालिक आमवात (Rheumatism) और गठिया में शरीर में संचरण करती हुई विषों को शरीर से बहिष्कृत करना अभिप्रेत होता है।

(ख) स्थूलता—इसके लिए उष्ण-वायु-स्नान दिये जाते हैं। इन उष्ण-वायु स्नानों को टर्किश बाथ के नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि इनसे केवल शरीर का स्वेदन द्वारा कुछ जलीय भाग ही परित्यक्त होता है जिससे शरीर का थोड़ा सा भार कम होता है, पर इनके साथ अगर पूर्वोक्त मर्दनादि, व्यायाम, आसन तथा भोजन आदि चिकित्साओं का उपयुक्त प्रकार से सम्मेलन

किया जाय तो रोगी का भार वस्तुतस्तु बहुत सा घट जाता है।

(ग) अगर रोगी बहुत उद्दण्ड हुआ २ हो और प्रलाप आदि कर रहा हो जैसे कि उन्माद रोगी मेनिया रोग में करते हैं क्योंकि मेनिया रोग में रोगी का वात संस्थान उत्तेजनाशील हुआ हुआ होता है तो तब संतपनोपचार प्रशमनार्थ प्रयुक्त किया जाता है।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है संतपन दो प्रकार का है आर्द्र तथा शुष्क।

आर्द्र में मुख्य रूप से निम्न तीन विधियाँ बर्ती जाती हैं।

(१) संतप्त जल स्नान (२) वाष्पस्नान और (३) पंक स्नान।

शुष्क में मुख्य रूप से निम्न दो विधियाँ बर्ती जाती हैं। (१) संतप्त वायु स्नान (२) सप्रकाशिकोष्मा स्नान।

(क) आर्द्र संतपन—

(१) गरम पानी के स्नान— इनका तापमान ६८ से १००° फ़ाहरनहाइट का होना चाहिए। इन्हें ५ से २० मिनिट की अवधि तक दिया जाता है। साधारण नमक (सोडियम हरिद) का मिलाना स्नान को अधिक उत्तेजनाजनक बनाता है। यह स्नान ठीक उसी तरह का हो जाता है जिस तरह कि गरम किए हुए समुद्र जल का स्नान। पानी में सोडा मिलाकर भी स्नान कराए जाते हैं। यह स्नान पुराने आमवात (Chronic rheumatism) कटिशूल और Sciatica में लाभकर होते हैं।

(२) वाष्पस्नान—इसका तापमान १०२° फ़ाहरनहाइट

होता है, स्नान १० से १५ मिनट तक दिया जाता है।

(३) पंकस्नान— पंक में गरमी पानी से अधिक देर रहती है। इसका तापमान ६५ से १०५° फ़ाहरनहाइट होना चाहिए। १५ से ६० मिनट तक दिया जाता है।

शुष्क संतपन—

(१) गरम वायु के स्नान— २१० से १२०° फाहरन-हाइट तक होता है। रोगी १० से १५मिनट तक प्रत्येक कमरे में में रहता है। पहिले सब से गरम कमरे में प्रविष्ट होता है फिर कम २ गरम कमरे में आता जाता है।

(२) सप्रकाशिकोष्मा स्नान— गरमी १५० से ३००° फा० की होती है और बिजली के लैम्पों से आती है। स्वेद लाने के लिए २५ से ३५ मिनट का स्नान दिया जाता है।

सब गरम स्नानों के बाद शरीर को ठण्डे स्पञ्ज लगाने चाहिए। और पर्याप्त विश्राम देना चाहिए।

(II) स्थानिक— शोथ को दूर करने और दर्द को मिटाने का सबसे उत्तम भौतिक उपाय स्थानिक संतपन है। यों तो सारी भौतिक-चिकित्सा चिरकालिक रोगों के लिए प्रयुक्त होती है पर स्थानिक संतपन तीव्र एवं चिरकालिक दोनों प्रकार की दशाओं में प्रयुक्त किया जाता है।

निम्न प्रकारों से प्रयुक्त किया जाता है।

(१) आर्द्र स्थानिक संतपन।

(क) गरम फोमेन्टेशन।

(ख) पुल्टिसें।

(ग) पंक के आरोपण।

(घ) स्थानिक स्नान।

(२) शुष्क स्थानिक संतपन।

(क) सप्रकाशिकोष्मा। Radiant heat.

(ख) इन्फ्रा-रेड् किरणें।

(ग) डॉयथर्मी।

आर्द्र स्थानिक संतपन—

(क) गरम फोमेन्टेशन— फोमेन्टेशन के लिए जो लिण्ट का टुकड़ा काटा जाय वह दोहरा करके लगाया जाना चाहिए। और इस प्रकार दोहरा किया हुआ लिण्ट सोजिश के स्थान से काफी बड़ा होना चाहिए। उबलते पानी में से निकाल कर इसे खूब निचोड़ कर सोजिश की जगह पर लगाना चाहिए। अगर खूब न निचोड़ा जाय तो बचा हुआ गरम पानी जगह को जला देता है। इसके ऊपर गरमी को रोके रखने के लिए जो आयल सिल्क लगाया जाय वह पहले से काट कर रक्खा हुआ हो। अगर बाद में काटना शुरू करोगे तो लिण्ट एक ओर ठण्डी हो जायगी। फोमेन्टेशन प्रति तीन घण्टे बाद बदल दिया जाता है।

अगर उदर शूल हो तो तारपीन के स्टूप लगाए जाते हैं। तारपीन के स्टूप एक प्रकार के फोमेन्टेशन हैं। पर फ़रक इतना ही है कि लगाने से पहिले लिण्ट के टुकड़ों पर थोड़ा सा तारपीन छिड़क दिया जाता है।

(ख) पुल्टिसें—भारत में अलसी के बीजों, आटे और हल्दी से तैय्यार की जाती है। जब अलसी के बीजों के साथ

राई के बीजों का चूर्ण मिलाकर पुल्टिस बनानी अभीष्ट हो तो १/४औंस राई का चूर्ण ४ औंस अलसी के बीजों के साथ मिलाकर १/२ पाइंट पानी में तैय्यार की जाती है। अलसी के बीजों की पुल्टिस हर ७ वें या ८ वें घण्टे बदल दी जाती है।

आजकल केओलीन की पुल्टिसों का बड़ा रिवाज़ चल गया है। एण्टिफ्लोजस्टीन वगैरह की पुल्टिसें केओलीन की बनी हुई होती है। केओलीन के साथ मुख्य रूप से ग्लिसरीन मिलाई हुई होती है। ये दोनों पदार्थ मिलकर बड़ी अच्छी पुल्टिस बनाते हैं। केओलीन गर्मी को बहुत देर तक बनाए रखती है। और ग्लिसरीन पानी को जज़ब करती है। इसलिए जल्दी नहीं सूखती।

ब्रिटिश फार्मेकोपिया के केओलीन के प्लस्तर में निम्न चीज़ें अपने दिए हुए भार के अनुपातों में उपस्थित होती हैं।

केओलीन ५७७ भाग, बोरिक एसिड ४५ भाग, थाइमोल आधा भाग, मिथाइल सैलिसिलेट २ भाग, पैपरमिण्ट का तेल आधा भाग और ग्लिसरीन ३७५ भाग।

इसको लगाने का ये तरीका है कि केओलीन के प्लस्तर के डब्बे को गरम पानी में गरम करते हैं। इससे प्लस्तर कुछ पिघल जाता है। पिघले हुए प्लस्तर को स्पेचुला पर लेकर लिण्ट पर लगा देते हैं। इस प्लस्तर की १/४" तह लिण्ट पर लगनी चाहिए। और अगर ये लगाते हुए कुछ ठण्डा या सख्त हो गया हो तो इसे आग के सामने ज़रा देर रखकर पिघला लेते हैं और जिस जगह पर लगाना होता है तुरन्त लगा देते हैं।

पुल्टिसें ऊपरी या गहरी सब तरह की शोथों और

शोथों वाली दर्दों में लगाई जाती हैं। गहरी शोथों और दर्दों में अधिक लाभदायक होती हैं। पित्ताश्मरी, सन्धिशूल, पार्श्वशूल, कास, उदरशूल आदि अनेकों अवस्थाओं में पुल्टिसें प्रयुक्त की जाती हैं।

(ग) स्थानिक गरम पंक का स्नान भी एक तरह पुल्टिस का ही काम करता है। सो इसके बारे में कुछ खास लिखने की जरूरत नहीं। किसी टब या बर्तन में गरम पंक डाला हुआ होता है और उसमें कलई या गुल्फसंधि के दर्दों में हाथ या पांव डाला जाता है। पंक का गाढ़ा पन मक्खन का सा होना चाहिए। और पंक का तापमान प्रारम्भ में १०८° फारनहाइट होना चाहिए और प्रतिदिन २° बढ़ाते हुए १२२° फारनहाइट तक ले जाना चाहिए। प्रत्येक स्नान ३० से ४० मिनट का होता है।

(घ) स्थानिक स्नान, व्यापी स्नानों की तरह सादे पानी, नमक के पानी या सोडे के पानी से दिए जाते हैं।

शुष्क स्थानिक संतपन—इस शीर्षक के नीचे, सप्रकाशोष्मा, इन्फ्रारेड किरणों और डायथर्मी का वर्णन अभीष्ट है। पर इनका वर्णन यहाँ नहीं किया जायगा। इनके ज्ञान के लिए पाठकों को कोई भौतिक चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तक पढ़नी चाहिए।

अन्य भौतिक चिकित्साएँ जो रोगों को दूर करने के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। मुख्य रूप से प्रकाश चिकित्सा (या किरण चिकित्सा) और विदयुत चिकित्साएं हैं। इनका वर्णन भी यहाँ नहीं किया जायेगा।



पुस्तक मिलने के पक्के ठिकाने—

मैनेजर झिंगन हाउस

रावलपिण्डी शहर

MANAGER JHINGAN HOUSE

Rawal Pindi City.

मैनेजर गुरुकुल पुस्तक भण्डार

पो॰ गुरुकुल कांगड़ी, सहारनपुर

MANAGER GURUKUL PUSTAK BHANDAR

P. O. Gurukula Kangari (Saharanpur)

